RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2019-2021

प्रेषक : मुकेश वर्मा (प्रधान संपादक)
'समावर्तन' (हिन्दी मासिक)
माधवी, 129, दशहरा मैदान
उज्जैन (म.प्र.) 456 010

पुस्त–प्रेष्य

यहां पते चिपकाएं

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

बारह वर्षों से अनवरत प्रकाशित 137 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

वर्ष 12 ■ अंक 05 ■ पूर्णांक 137 ■ अगस्त 2019 ■ ₹ 150/–

रंगशीर्ष

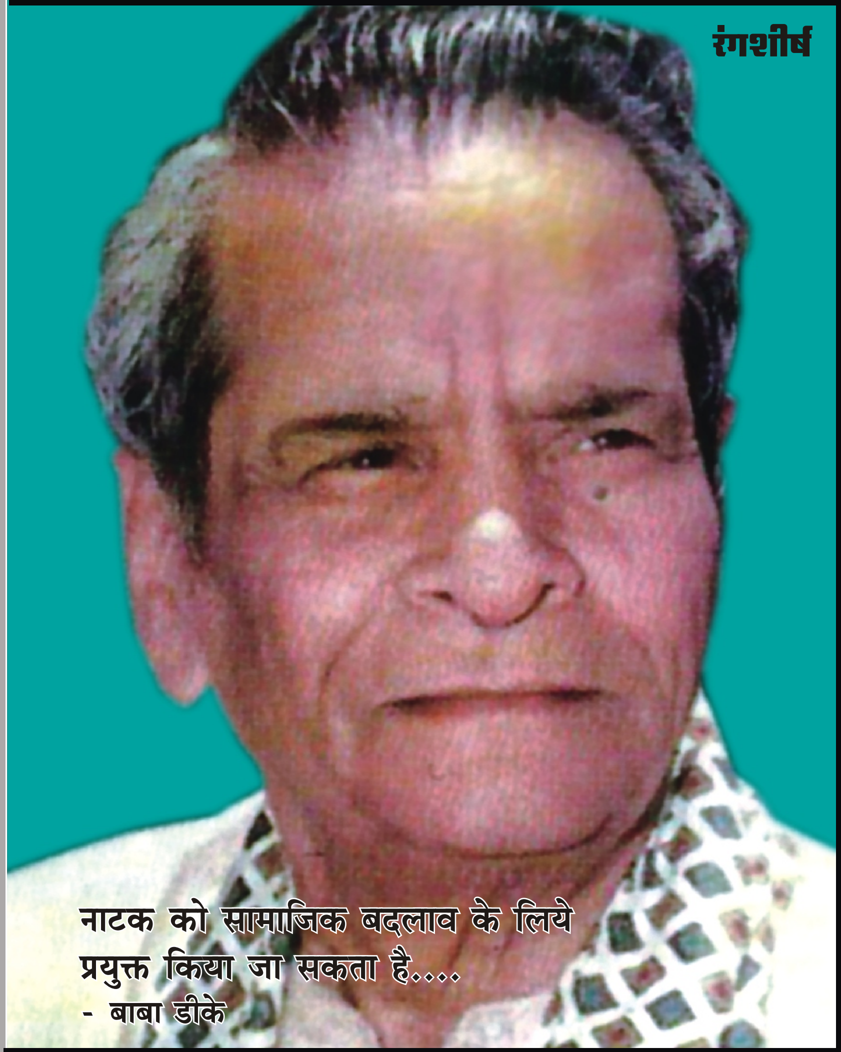

नाटक को सामाजिक बदलाव के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है....
- बाबा डीके

अभिमुख : रमेश दवे
अनन्तिम : मुकेश वर्मा
मेरा नमन : अजय भट्टाचार्य
रेखांकित : भास्कर चौधुरी की कविताएँ
चयन : निरंजन श्रोत्रिय
कहानी :बिना छत का घर : मालती जोशी
कविताएँ : स्व.प्रदीप चौबे, किशोर काबरा, शोभा जैन

सरोकार

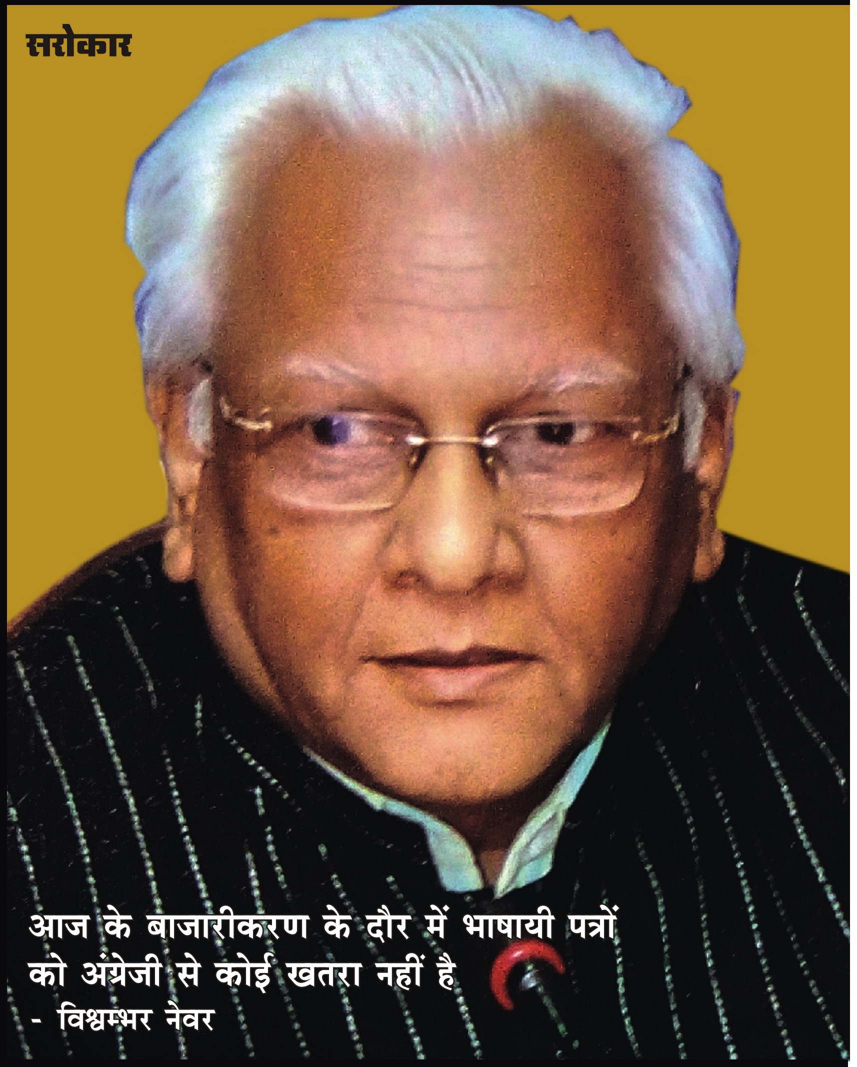

आज के बाजारीकरण के दौर में भाषायी पत्रों को अंग्रेजी से कोई खतरा नहीं है
- विश्वम्भर नेवर

कथाराग-17

जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' की कहानी : जिल्दसाज एवं स्व.कमलाप्रसाद का आलेख : चयन : मुकेश वर्मा

घरोंदे-9

(लघुकथा केन्द्रित द्वैमासिक स्तम्भ)
इस बार सुषमा दुबे की लघुकथाएँ
चयन : वाणी दवे शर्मा

प्रथम पृष्ठ, वीक्षा, साहित्यिक हलचल, चिट्ठी-पत्री

मुम्बई की संस्था चौपाल के 21वें जीवन पर्व पर विशेष सामग्री : निर्मला डोसी

हार्दिक बधाई

निरंजन श्रोत्रिय

हिन्दी की प्रमुख साहित्यिक समूह पत्रिका 'सृजन पक्ष' द्वारा समावर्तन के मुख्य संपादक कवि-कथाकार श्री निरंजन श्रोत्रिय को जनपक्षधरता की प्रतिबद्ध कविता, कहानी लेखन एवं कविता द्वादश द्वारा युवा कवियों को अपनी आलोचना के साथ कविता के केन्द्र में लाने के लिए 'सृजनपक्ष-सम्मान-2019' से सम्मानित होने पर हार्दिक बधाई....

समावर्तन परिवार

उज्जैन, मुम्बई, कोलकाता, सूरत, अहमदाबाद, भोपाल, इन्दौर एवं नई दिल्ली

ISSN - 2348-8638

वर्ष 12 ■ अंक 05 ■ पूर्णांक 137 ■ अगस्त 2019 ■ रू. 150/-

समावर्तन®

मासिक पत्रिका

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
गिरिराज किशोर (कानपुर), रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), नन्दकिशोर नौटियाल (मुम्बई), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

समावर्तन का मूल्य
सदस्यता प्रति अंक : 150 रु. मासिक वार्षिक - 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100 $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान, उज्जैन (म.प्र.) 456010

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

वार्षिक सदस्यता हेतु डिजिटल भुगतान
बैंक का नाम - आयडीबीआई
ब्रांच का नाम - फ्रीगंज, उज्जैन
खाता क्रमांक - 0088102000031620
खातेदार का नाम - समावर्तन
आयएफएससी नं. - आय.बी.के.एल 0000088

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 98938 10050

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.94795 60623

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

मुद्रणालय : आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन®

अगस्त -2019

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : शांतिपाठ : मुरलीधर चाँदनीवाला 05

अभिमुख : शब्द इतना स्वतंत्र लगे कि...! : रमेश दवे 06

मेरा नमन : समावर्तन के ग्यारह वर्ष (चार) : अजय भट्टाचार्य 07

रंगशीर्ष

गंगाधर महादेव डिके

परिचय : बाबा डिके : 08

उनकी शिराओ में लहू नहीं रंगकर्म

बहता था : संदीप राशिनकर : 08

नाटक के खातिर.....: डॉ.संजय जैन : 10

साक्षात्कार : बाबा डिके से नगेन्द्र आजाद की बातचीत : 12

सुधिजनों की दृष्टि में बाबा डिके : 14

सरोकर

विश्वम्भर नेवर

परिचय : विश्वम्भर नेवर : 39

जो घर फूंके आपनो....: विश्वम्भर नेवर : 40

आक्सफोर्ड में भी बजा.....: विश्वम्भर नेवर : 41

वे सबकी सुनते हैं : विपीन नेवर : 42

नेवरजी से मिलते हुए....: रेशमी पांडा मुखर्जी : 43

नेवरजी से रेशमी पांडा की बातचीत : 44

रेखांकित : भास्कर चौधुरी की कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 16

कहानी : बिना छत का घर : मालती जोशी : 19

कविताएँ : किशोर काबरा, शोभा जैन, प्रदीप चौबे : 22

कथाराग-17

जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली' की कहानी : जिल्दसाज

एवं स्व.कमलाप्रसाद का आलेख : वनमाली की पुनर्जागरणमूलक कहानियाँ

चयन : मुकेश वर्मा (26-31)

घरौंदे-9

(लघुकथा केन्द्रित द्वैमासिक स्तम्भ)

इस बार सुषमा दुबे की लघुकथाएँ : 32

चयन : वाणी दवे शर्मा

मुम्बई की संस्था चौपाल के 21वें जीवन पर्व पर विशेष सामग्री : निर्मला डोसी : 49

अध्ययन-आकलन : रमेश दवे : 54

वीक्षा : सूर्यकांत नागर, जीवनसिंह ठाकुर,अरुण अर्णव खरे,

सुरेश उपाध्याय, बी.एल.आच्छा, मनीष वैद्य : 57

साहित्यिक हलचल : 65, अनंतिम : मुकेश वर्मा : 69

अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे * रेखांकन : संदीप राशिनकर

शांतिपाठ

वैदिक ऋषियों की प्रार्थना के शब्द चाहे जितने रहस्यमय हों, उन शब्दों की सर्वांगीण चेतना में शान्ति का ही नाद सुनाई देता है। वैदिक मंत्रों का सर्वोच्च लक्ष्य ही है-सम्पूर्ण शान्ति की खोज। ऋग्वेद के प्रथम मंडल का 90वाँ सूक्त प्रकाश के देवताओं को समर्पित है। इस सूक्त की अंतिम चारों ऋचाओं का समुच्चय वह शान्तिपाठ है,जो वैदिक समय में ही विश्वशान्ति की चिरन्तन अभीप्सा का पर्याय बन चुका था।

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्न सन्त्वोषधिः।।
मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः।
मधु द्यौरद्यौरस्तु नः पिता।।
मधुमान्नो वनस्पति र्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः।।
शं नो मित्रः शं वरूणः शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरूरूक्रमः।।

ऋग्वेद , 1.90 .6,7,8,9.

प्रकाश के देवताओं!
हमें सरलता के मार्ग पर ले चलो।
तुम विद्वान् हो, जानते हो हमारा अंतरंग।
तुम दिव्य कृपाओं से ओतप्रोत हो ,
हम सबको दिव्य प्रकाश में ले चलो।।1।।

प्रकाश के देवताओं!
तुम वसुओं के स्वामी हो।
तुम तेज और ज्ञान से परिपूर्ण हो,
रक्षा करते हो हमारे व्रतों की,
हमें अपने प्रकाश से भर दो।।2।।

प्रकाश के देवताओं!
हमें मृत्यु से अमरता में ले चलो।
द्वेष के जंजाल से मुक्त कर
हमें अपनी शान्ति में जगह दो।।3।।

प्रकाश के देवताओं!
हम तुम्हारी वंदना करते हैं।
तुम हमें उस पथ पर ले चलो
जो स्वर्ग के आनंद में खुलता हो।।4।।

प्रकाश के देवताओं!
हमारी बुद्धि को इन्द्रियों में प्रेरित करो,
हमारे सब कर्म उज्ज्वल हों,
सर्वत्र स्वस्ति हो।।5।।

हवाओं में मधुरता हो,
नदियों के प्रवाह में मधुरता हो ,
सब ओषधियों में
मधु का संचार हो।।6।।

रात्रि का समय मधुर हो,
उषाकाल मधुर हो ,
यह पार्थिव संसार मधुर हो,
पिता आकाश मधुर हो।।7।।

वनस्पतियों में मधु हो ,
सूर्य की रश्मियाँ मधुर हों ,
हमारी धेनुएँ मधुशालिनी हों।।8।।

मित्र शान्तिकारक हों ,
वरूण शान्तिकारक हों।
अर्यमा हमें शान्ति दे ,
इन्द्र हमें शान्ति दे,
शान्ति का संचार करे बृहस्पति ,
विष्णु शान्ति को लोकव्यापी कर दे।।9।। स

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम

अभिमुख

शब्द इतना स्वतंत्र लगे कि...!

रमेश दवे

साहित्य तो शब्द की स्वतंत्रता का ही लोकतंत्र है। शब्द के पास जो अर्थ-सत्ता होती है, उससे राजनीतिक सत्ताएँ डरती हैं फिर चाहे वह सत्ता लोकतांत्रिक हो या राजतांत्रिक या तानाशाही। वैसे शब्द किसी भी प्रकार के भय या आतंक का पर्यायवाची नहीं होता। वह जो भी साहित्य रचता है, उससे साहित्य और साहित्य-कार दोनों मुक्त होते हैं, दोनों प्रभावशाली होते हैं और दोनों लोकव्यापी होकर लोक और लोकतंत्र दोनों को सुदृढ़करते हैं। चाहे शब्द से एक रचनाकार दुख अभिव्यक्त करे या आनंद, मगर शब्द तो दुख का भी उत्सव है और आनंद का भी उत्सव। जब कोई भी राज या सत्ता शब्द का निरंकुश प्रयोग करती है तो शब्द की काया आदेशों, फरमानों और बंदिशों की बंदी बन जाती है। ऐसा या तो तानाशाही व्यवस्था में होता है या किसी अचानक घोषित आपातकाल में। ऐसे में रमेशचन्द्र शाह जैसा कवि शब्द से ही प्रश्न करता है -

''शब्द बताओ/ कहना क्या है?/ शब्द बताओ/ गहना क्या है?/ मेरा तुम्हें/ तुम्हारा मुझे/ उलहना क्या है?/ शब्द बताओ कहना क्यों है?/ शब्द बताओ/ सहना क्यों है?/ तुमने हमको/ हमने तुम को/ पहना क्यों है?/

शब्द से ऐसे प्रश्न वही व्यक्ति या रचनाकार कर सकता है जो ऐसी स्वतंत्रता चाहता हो जिसमें शब्द की प्रश्न-शक्ति को सत्ता-शाक्ति न तो डरा सके, न कैद कर सके और न पाबंदी लगा सके। तत्कालीन सोवियत रूस ने सोल्जेनित्शिन, पेस्तरनॉक और सखारोव पर निरंकुश पाबंदी लगाई तो जरूर मगर न सोल्जे नित्शिन का शब्द भयभीत हुआ, न पेस्तरनॉक का और न सखारोव के विज्ञान का शब्द। परिणाम क्या हुआ, रचनाकार और उसके शब्द का अंत तो हो नहीं सका मगर सोवियत सत्ता और उनके यातना-शिविरों का अंत न केवल रूस में बल्कि पोलेण्ड, हंगेरी, जर्मनी, रोमानिया, बुल्गेरिया आदि सभी देशों में हो गया। क्या इसका तात्पर्य यह नहीं कि सत्ताएँ नहीं बदलती बल्कि शब्द की शक्ति से ही सत्ताएँ धराशायी होती है। यह तो एक ईमानदार शब्द की स्वतंत्रता, स्वायत्तता और लोकशक्ति है।

आज का राजनीतिक परिदृश्य शब्द के कष्ट या दुख का परिदृश्य है। शब्द का प्रयोग न केवल विचारधाराओं की शक्तिशाली धारा बन पाया और न शब्द को उसके सच्चे अर्थ में मुक्त रख सका जिसका परिणाम है शब्द की महिमा का पतन और उसके स्थान पर उच्छृंखल, उत्तेजक, अश्लील और अमर्यादित भाषा का ऐसा प्रयोग की जिससे भाषा भी लज्जित हो उठी, विचार भी लड़खड़ाने लगा और राजनीति भी प्रदूषित हो गई। यदि शब्द की इस बेलगाम आततायी, अनियंत्रित, अमर्यादित शब्दावली का ऐसा ही प्रयोग होता रहा तो क्या किसी दिन हमारा संविधान या तो स्वयं आत्म-हत्या कर लेगा या उसकी हत्या कर दी जाएगी। न्याय व्यवस्था अन्याय अथवा प्रायोजित न्याय में बदल जाएगी, प्रशासनिक व्यवस्था की हर नोट-शीट सत्ता के डर का नोट लिखेगी, पुलिस अधिक निरंकुश हो जाएगी और आम जन की आजादी को सत्ता की तानाशाही लील जाएगी। इसलिए जरूरी है कि शब्द की रक्षा का स्वाभाविक दायित्व साहित्यकार ही निभायें क्योंकि चाहे कवि, कथाकार, नाटककार, व्यंग्यकार या पत्रकार हो या स्वतंत्र लोकधर्मी राजनीति का प्रतिनिधि उसके शब्दों से सत्ता की निरंकुश शक्ति पर रोक लगे और कवि भवानी प्रसाद मिश्र और दुष्यंत कुमार को कविता के जरिये गोरिल्ला युद्ध न करना पड़े। आपातकाल में जब अखबार और पत्र-पत्रिकाओं के संपादकीय पृष्ठ निःशब्द कोरे कागज में बदल गए थे तो कोरा कागज भी ऐसा शब्द बन गया था कि सत्ता की पूरी ताकत को एक पतले से कोरे कागज ने डरा दिया था।

आज देश के तमाम शब्द-धर्मियों, शब्द-कर्मियों और विचारकों को यह सोचना होगा कि शब्द की गरिमा और महिमा को राजनीतिक प्रदूषण और निरंकुश शब्दावली से कैसे बचाया जाए। भारत को सांस्कृतिक भूमि का देश कहा जाता है। यहाँ से तो गच्छहवन, संवदध्वन, संवो मनोजिनबल का संदेश दिया जाता है। हम केवल हड़प्पा-मोहनजोदेड़ो या सिंधु-सभ्यता के नाम पर या अपने वाड्.मय के नाम पर संस्कृति या सभ्यता का कीर्त्तन कब तक करते रहेंगे, हम भी तो शब्द की स्वतंत्रता का ऐसा स्थापत्य, ऐसा शिल्प ऐसा सौन्दर्य और संवेदन क्यों न रचें कि संविधान प्रफुल्लित हो उठे, न्याय 'सत्यमेव जयते' का उद्‌घोष बने और प्रशासन, राजनीति का हर शब्द न केवल स्वच्छ बल्कि पवित्र लगे। शब्द को स्वतंत्रता के उस संस्कार में जीने की शक्ति केवल साहित्यकार ही दे सकता है क्योंकि निर्मल वर्मा के शब्दों में साहित्य में ही सच लिखा जा सकता है, इसलिए शब्द इतना स्वतंत्र हो कि मनुष्य स्वतंत्र लगे, रचना स्वतंत्र लगे, विचार स्वतंत्र लगे, संविधान और न्याय स्वतंत्र लगे, और स्वयं स्वतंत्रता भी स्वतंत्र लगे।

इस अंक में विख्यात चित्रकार स्व.बाबा डिके के कृतित्व पर रंगशीर्ष स्तम्भ में महत्त्वपूर्ण सामग्री संयोजित की गई है वहीं सुप्रसिद्ध पत्रकार-सम्पादक श्री विश्वम्भर नेवर (कोलकाता) के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सरोकार स्तम्भ केन्द्रित है।

स्तम्भ 'कथाराग' भी इस अंक को समृद्ध कर रहा है। सभी पाठकों, लेखकों और सहयोगियों को समावर्तन परिवार की ओर से स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर हार्दिक बधाई। स

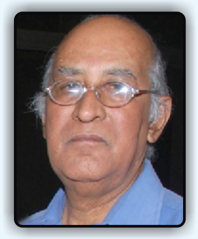

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

मेरा नमन...

समावर्तन के ग्यारह वर्ष (चार)

मैं जब-जब समावर्तन के सम्पादक मंडल की चर्चा करता हूँ, तब तब स्वयं को महिमा-मंडित महसूस करता हूँ। मैं तो यह मानता हूँ, तहेदिल से, और पूरी आस्था के साथ कि समावर्तन को इससे बेहतर सम्पादक मंडल मिल ही नहीं सकता है।

समावर्तन के **मुख्य संरक्षक,** बहुआयामी सर्जक, चिन्तक एवं पाँच विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति, चौंकाने वाले अद्भुत विद्वान **श्री संतोष चौबे समावर्तन के आधार स्तम्भ है।** काश! वे हमारे सभी मूल्यवान सम्पादकों की तरह अपनी विद्यासागरी प्रतिभा के अनुरूप, समावर्तन के लिए एम मासिक स्तम्भ लिखते तो समावर्तन के खाते में एक और धरोहरधर्मी समृद्धि जुड़ जाती।

इसी धरोहरधर्मिता के मूल मंत्र के साथ समावर्तन का शुभारंभ बाबा ने किया था जिसकी चरितार्थता के लिए उन्होंने **कितने ही स्तंभों को उकेरा। यही कारण है कि पिछले ग्यारह वर्षों में 50 से अधिक शोधार्थी अपने शोध कार्य के लिए समावर्तन की माँग करते रहे हैं। यह माँग प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है और समावर्तन के हर स्तम्भ के लिए होती है।**

आवरण पृष्ठ के लिए तीन स्थायी स्तम्भ - **एकाग्र/ रंगशीर्ष/ सरोकार।** ऐसे **स्थायी आवरण पृष्ठ** की कल्पना पहली बार समावर्तन में की गयी जो पिछले ग्यारह वर्षों से अपनी विशिष्ट निरन्तरता बनाए हुए है। स्थायी होते हुए भी हर अंक स्वरूप में नया जिसके लिए समावर्तन के कला सम्पादक **श्री अक्षय आमेरिया का कमाल कारगर बना हुआ है। यानी स्थायित्व तो है मगर एकरसता नहीं है।**

'पृथम पृष्ठ' से शुभारम्भ होता है हर अंक का जिसे शुरूआती दौर में डॉ.जगदीश शर्मा संस्कृत साहित्य के विपुल भण्डार से चुन चुनकर कथाएँ प्रस्तुत करते रहे। उनके बेहद दुखद असामयिक निधन से यह सिलसिला बन्द हो गया। 'प्रथम पृष्ठ' को नया काव्यात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए बाबा ने एक असाधारण संस्कृत विद्वान की खोज की- डॉ.केदारनाथ शुक्ल जिन्होंने वेदों की ऋचाओं का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर चमत्कृत कर दिया। केदारजी ने इसकी अबाध निरन्तरता सौ अंकों तक बनाए रखी। फिर उन्होंने विराम की इच्छा प्रकट की। तत्काल बाबा ने एक अनोखे विद्वान की खोज की - **डॉ.मुरलीधर चांदनीवाला** जिन्होंने अपनी शैली में वेदों की ऋचाओं का काव्यात्मक अनुवाद प्रस्तुत कर पाठकों विद्वानों का मन मोह लिया।

'अभिमुख' के बारे में क्या लिखूँ। छोटे मूँह बड़ी बात होगी। पाठकों-लेखकों की प्राथमिकता है 'अभिमुख'। अखबारों की हेडलाइन का जो महत्व है, वही महत्व अभिमुख का है जिसे ज्ञान के भण्डार आलोचना लेखन की अद्वितीय लयात्मक शैली के जनक, **समावर्तन परिवार के मुखिया, सम्पादक मंडल के अध्यक्ष प्रोफेसर रमेश दवे** ने प्रथम अंक से बेरोकटोक निरन्तर बनाये रखा है। इतना ही नहीं उनकी सक्रियता इतनी व्यापक है कि समावर्तन के लिए बहुमूल्य सामग्री जुटाने में वे अनवरत जुटे हुए हैं। एक विशिष्ट चिन्तन परक स्तम्भ **'मनोराग'** की प्रस्तुति की कल्पना हम समावर्तन में कर ही नहीं सकते थे, यदि हमारे नेतृत्व के लिए के लिए रमेश दवे जी जैसे महान दार्शनिक चिंतक नहीं होते। वे हमारे मुखिया हैं इसलिए तो समावर्तन सर्वांगपूर्ण है।

तीन स्तम्भों के साथ घनिष्टता से जुड़े हुए हैं **समावर्तन के प्रधान सम्पादक श्री मुकेश वर्मा।** इनमें से दो स्तम्भ तो उनके विख्यात कथाकार व्यक्तित्व को उजागर करते है। जिसमें एक मासिक स्तम्भ है **'समकाल-कथाकाल'** जिसके लिए वे मुख्यतः युवा कहानीकारों का टिप्पणी सहित चयन करते हैं और दूसरा है **'कथाराग'** जिसे वे एक विख्यात कथाकार पर केन्द्रित करते हैं। उनका तीसरा स्तम्भ है उनका निजी लेखन, जिसका नामकरण उन्होंने किया है- **'अनन्तिम'**। उनके शैलीकृत लेखन की मिसाल है - **'अनन्तिम'।** यह मुकेशियन शैली उनकी लोकप्रिय पहचान बन गयी है। **अनन्तिम भी सौ अंक पार कर चुका है।** अब बेताबी से इन्तज़ार है उनके पहले उपन्यास का।

गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' और मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' जैसी लोकप्रियता हासिल करने वाली अपने किस्म की पहली सरगम शैली की कविता 'जुगलबन्दी' के रचयिता, समावर्तन के मुख्य सम्पादक **डॉ.निरंजन श्रोत्रिय** ने समावर्तन के लिए **रेखांकित युवा कविता** के प्रतिमाह अद्भुत पारखी दृष्टि से चयन का नया प्रतिमान गढ़ा है। अज्ञेय जी के तार सप्तक शृंखला से इसकी तुलना व्यर्थ है क्योंकि अज्ञेयजी ने तारसप्तक, दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक में पहले से प्रतिष्ठित कवियों को स्थान दिया है। जबकि निरंजनजी ने नये-नये कवियों को खोजा है। यहाँ तक कि गाँव-खेड़े से भी। प्रत्येक अंक में एक युवा कवि की आठ-दस और कभी अधिक भी कविताओं का कवि के परिचय सहित प्रकाशन और प्रत्येक कवि पर सार्थक टिप्पणी लेखन जैसा दुरूह कार्य सम्पादित कर उन्होंने आश्चर्य चकित करने वाली अपने किस्म की एकमात्र मिसाल प्रस्तुत की है। उन्होंने सौ से अधिक कवियों को न केवल चुना है बल्कि हर वर्ष छपने वाले 12 कवियों का काव्य संकलन **'युवा द्वाद्वश'** भी प्रकाशित करवाकर इस धरोहर को संग्रहणीय पुस्तकाकार दिया है। युवा द्वाद्वश की यह जो मशाल जलायी है निरंजन जी ने उसे हमेशा हमेशा के लिए प्रज्ज्वलित रखने का ऐतिहासिक कार्य अवश्य करेंगे। (क्रमशः) स

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

गंगाधर महादेव डिके
प्रसिद्धनाम : बाबा डिके

जन्म : 07/06/1919 नीमच (म.प्र.)

उम्र के 11 वें वर्ष में (सन् 1930) मंच पर एकपात्रीय अभिनय से शुभारंभ

1932 में महत्वाकांक्षी बालोद्धार मंडळ की स्थापना

15 अगस्त 1955 से 'नाट्यभारती इन्दौर' संस्था की स्थापना

1956 से 1962 तक दिल्ली के तालकटोरा गार्डन में होने वाले समर ड्रामा फेस्टिवल में 7 नाटकों की प्रस्तुतियाँ

1966 से महाराष्ट्र राज्य नाट्य महोत्सव में भाग लेते रहें

कारकून, लोह परिसा लागेना, रायकरवाडी, अभिनय, अडगळ इत्यादि नाटकों में अभिनय, निर्देशन, नाट्य लेखन के पुरस्कार

सर्वाधिक रजत पदक प्राप्त करने पर 'सम्माननीय कलाकार' का गौरव

दर्शक सदस्यों की संस्था 'लिटिल थिएटर' का संचालन सन् 1957 से निम्न सफल नाटक प्रस्तुत किये-

बांसुरी, व्हाइटहेअर्ड गर्ल, रायकरवाडी, मंगु, कारकून, नूरजहाँ, शहाजहाँ, काका की शशी, मृत्यु के बाद, अमीर, कस्तूरीमृग, आषाढका एक दिन, शी स्टूप्स द काँकर, बॅरिटस ऑफ विंपोल स्ट्रीट, विजया, दृष्टिदान, अहंकार, तसवीर, धूमकेतु, वाटिका आदि। व्यस्तता के कारण 1966 में यह संस्था बंद करनी पड़ी।

आकाशवाणी के लिए नाटक लिखे एवं प्रस्तुत किये।

गीत नाटक प्रभाग भारत सरकार के लिये स्वीकृत नाटक - 1 मंगू, 2 खाई, 3 मयूरी, 4 संकल्प, 5 जगन्नाथ आत्माराम

लिटिल थिएटर की पुनर्स्थापना 1995में, 'आजीव दर्शक' सदस्य संख्या 250

सन् 1992 में भारत भवन, भोपाल के ट्रस्टी पद पर नियुक्ति

योजना प्रचार नाटकों के 2000 से अधिक प्रयोग, पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, आंध्रप्रदेश, महाराष्ट्र राज्यों के भ्रमण 1985 से 1990 तक

इन्दौर में 1987 में अखिल भारतीय मराठी नाट्य सम्मेलन का सफल आयोजन तथा स्वागताध्यक्ष पद पर नियुक्ति

निधन - 15 नवंबर, 1996

(बाबा डिके की शताब्दी वर्ष पर विशेष)

उनकी शिराओं में लहू नहीं रंगकर्म बहता था

संदीप राशिनकर

इन्दौर की वर्तमान में रंगकर्म की सक्रियता सिर्फ लक्ष्यवेधी ही नहीं उल्लेखनीय भी है। अब अगर इस सक्रिय रंगकर्म की इन्दौर की तासीर की कोई तस्वीर बनाने की बात आती है तो प्रमुखता से एक चेहरा उभरता है और वह कोई और नहीं बल्कि बाबा डिके का होता है। यह अनायास नहीं है कि जब भी या जहाँ भी यहाँ के रंगकर्म का जिक्र होता है तो याद आते हैं बाबा ! यह बाबा का रंगकर्म के प्रति ताउम्र निष्ठा और समर्पण ही था जिसके चलते यहाँ के रंगकर्म का चप्पा-चप्पा मात्र बाबामय ही नहीं हुआ, वरन् हम जान भी नहीं पाये कि बाबा और रंगकर्म कब हमारे लिए एक-दूसरे का पर्याय बन गये।

बाबा वह शख्स थे जिन्होंने अपने भीतर मौजूद कलातत्त्व को निरंतर साधना से निखारते हुए न सिर्फ स्वयं को प्रसिद्ध रंगकर्मी के रूप में स्थापित किया, वरन् अपने स्वभाव, व्यवहार व संवेदनाओं से स्वयं को एक मिसालनुमा इंसान के रूप में तराशा। 'आपले वाचनालय' के एक कार्यक्रम में शिरकत के दौरान देर हो जाने पर मैं उन्हें जब छोड़ने जा रहा था तक एक ऑटो मिल जाने पर मैंने चालक से कहा "इन्हें प्रेमनगर (उनका निवास) जाना है, ये घर बता देंगे।" तुरंत ऑटो चालक बोल पड़ा- "मैं जानता हूँ, बाबा को कौन नहीं जानता ?" यह उदाहरण यहाँ देने के पीछे सिर्फ मंशा यह है कि बाबा डिके उस शख्सियत का नाम है जिसने अपनी कला की बदौलत न सिर्फ सभ्रांत या किसी वर्ग विशेष तक अपनी पहचान बनाई, वरन् अपने इंसानी जज्बों के चलते समाज के उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक के लोगों ने उन्हें अपनाया, सम्मान और प्यार दिया। जिसने भी बाबा को देखा या एक बार मिला बस ! हमेशा के लिए उनका होकर रह गया। यह करिश्मा उनकी मिलनसार, जिंदादिल शख्सियत का था। प्रख्यात नाटककार विजय तेंडुलकर बाबा के अमृत महोत्सवी समारंभ में यह कहने से नहीं चुके कि बाबा अगर नाटककार-कलाकार नहीं होते तो सिर्फ एक सरकारी मुलाजिम ही होते, तो भी वे मुझे इतने ही शिद्दत से याद आते ! क्योंकि बाबा के भीतर जो कलाकार था उससे भी बड़ा था उनका एक सहृदय इंसान होना।

बाबा के मिलनसार व्यक्तित्व की बदौलत ही उनके चाहने वालों का वृहद् वर्ग हर जगह मौजूद है। उस वर्ग में भाषा, जाति, उम्र आदि की विभिन्नता बाबा की सर्वव्यापी लोकप्रियता को न केवल रेखांकित करती है, वरन् एक कलाकार होने के साथ-साथ सही अर्थों में उनके एक इंसान होने की भी गवाही देती है। उनके सम्बन्ध न तो किसी विशेष सामाजिक स्तर की माँग करते थे और न ही किसी आयु मर्यादा का बंधन मानते थे। इसका मेरा व्यक्तिगत उदाहरण याने हमारे यहाँ मेरे दादाजी त्रिंबक राय मेरे पिताजी वसंतजी व मुझसे यानी तीनों पीढ़ीयों से उनका सम मित्रवत् व्यवहार होना था।

यही वजह थी कि जहाँ उनके मित्रों की फेहरिस्त में पु.ल. देशपांडे, कुमार गंधर्व, विजया मेहता, राहुल बारपुते, शरद जोशी, गुरुजी विष्णु चिंचालकर जैसे नामचीन व्यक्ति थे, वहीं एक सामान्य व्यक्ति भी उस फेहरिस्त में अपनी भी बराबरी की उपस्थिति पाता था।

मात्र ग्यारह वर्ष की उम्र से रंगकर्म से जुड़े बाबा यानी गंगाधर महादेव डिके का जन्म 7 जून 1919 को नीमच में हुआ था। उम्र के बारहवें वर्ष में 'अकांड तांडव' नाटक के लेखन से शुरू हुआ उनके रंगकर्म का सिलसिला अनेकानेक नाट्य क्षेत्रों की बुलंदियों को छूता हुआ 15 नवंबर 1996 के दिन उनकी अंतिम साँस तक चलता रहा। उनकी सक्रियता व प्रेरणा से वंसत राशिनकर द्वारा स्थापित सक्रिय साहित्य, कला संस्कृति केन्द्र (आपले वाचनालय ने सन् 1995 में सर्वप्रथम मराठी एकांकी स्पर्धा की शुरूआत की। बाबा के रंगकर्म समर्पण एवं आपले वाचनालय से उनकी आत्मीयता के चलते बाबा के अमृत महोत्सवी वर्ष में उनके सम्मान का सिलसिला भी आपले वाचनालय में आयोजित गरिमामय कार्यक्रम से ही शुरू हुआ था। 1996 में बाबा के आकस्मिक निधन के बाद आपले वाचनालय ने अपनी मराठी एकांकी स्पर्धाओं को 'बाबा डिके स्मृति मराठी एकांकी स्पर्धा' का नाम देते हुए उनके दीर्घ रंगकर्म अवदान का सम्मान किया।

अदम्य ऊर्जा के स्रोत बाबा के अमृत महोत्सव आयोजन में जिन्होंने उन्हें सुना वे उनकी सक्रियता, योजनाओं और उत्साह से आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहे। आपले वाचनालय के उनके अमृत महोत्सवी आयोजन के उद्बोधन में जहाँ बाबा ने इन्दौर में नियमित थियेटर नहीं बन पाने के अपने अवसाद को स्वीकारा, वहीं उसके लिए अपनी जीवटता और प्रयासों को तेज करने का आश्वासन नाट्यरसिकों को देते हुए उन्होंने कहा था कि अभी भी उन्हें कई चौके और छक्के लगाने हैं। उनका रंगकर्म के प्रति समर्पण दुर्लभ और अकल्पनीय था। अगर उनके अनुज बंडु डिके यह कहते हैं कि बाबा नाटक ही ओढते, बिछाते, पहनते या खाते-पीते थे तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि जीवन का हर लम्हा नाट्यकर्म को समर्पित करने वाले बाबा के बारे में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि बाबा की शिराओं में लहू नहीं, रंगकर्म बहता था।

मृत्युपर्यंत सतत् नाट्यकर्म को जीने वाले बाबा ने इन्दौर को अपनी कर्मभूमि बनाते हुए बालोद्धार मंडळ, नाट्यभारती, लिटिल थियेटर के माध्यम से न सिर्फ इन्दौर को नाट्य चेतना से झंकृत किया, बल्कि इस भूमि को उन्होंने नाट्य संस्कार से नवाजा है। उनकी रंगकर्म निष्ठा की बदौलत रंगकर्म की प्रत्येक भूमिका वह चाहे नाट्य लेखन हो, अभिनय हो या दिग्दर्शन हो, हर क्षेत्र में उन्होंने अपनी असीमित क्षमताओं का परिचय नाट्य रसिकों को दिया है। तकरीबन बत्तीस मौलिक, तेईस अनूदित और छब्बीस रूपांतरित नाट्य लेखन की अकूत सम्पदा सहेजने वाले बाबा ने शहरी नाट्यगृहों, गणेशोत्सवों के मंचों से लेकर दिल्ली के ताल कटोरा मैदान या बाबा आमटे के आनंदवन तक सैकड़ों नाटकों का सफलतापूर्वक मंचन किया।

नूरजहाँ, खाई, कारकून, मयूरी, जीवा और शिवा, अडगळ, रायकरवाडी ऐसे अनेक नाटकों की लंबी फेहरिस्त है। बाबा की रंगयात्रा में जिसे जनमानस से असीम स्नेह मिला है। नाटक चाहे समस्या प्रधान हो, ऐतिहासिक हो या सामाजिक, बाबा ने हर नाट्य प्रस्तुति में मनोरंजन तत्त्व को महत्ता दी है। भले ही वे नाटकों में किए जाने वाले नित नए प्रयोगों से सहमत नहीं थे फिर भी नाट्यकर्म की समृद्धि और प्रतिष्ठा हेतु उन्होंने वांछित सुझावों को अंगीकार करते हुए हमेशा अपने खुलेपन का प्रमाण दिया। आज इन्दौर के नाटकों में स्त्री पात्रों के अभिनय का श्रेय बाबा को जाता है, जिन्होंने स्त्री भूमिकाओं को स्त्री पात्रों द्वारा अभिनीत कराके इस सिलसिले की शुरूआत की। मराठी भाषी होते हुए भी उन्होंने जिस समर्पण से हिन्दी रंगमंच हेतु कार्य किया, उससे वे हिन्दी-मराठी रंगकर्म के सेतु बन गए थे। पचहत्तर वर्ष की आयु में गर कोई लिटिल थियेटर को पुनर्जीवित करने और सांस्कृतिक गणेशोत्सव को पूर्ण गरिमा देने हेतु पुनर्रचना का माद्दा रखता था तो उसकी क्रियाशीलता, कलानिष्ठा और अदम्य उत्साह का सहज ही अंदाज लगाया जा सकता है। जगह-जगह आयोजित अमृत महोत्सव में बाबा के उद्बोधनों, साक्षात्कारों में इन्दौर में नियमित थियेटर नहीं बना पाने का दुःख अगर उन्हें कचोटता था तो वह स्वाभाविक भी था, किन्तु इन्दौर को नाट्य संस्कार देने वाले तथा इस क्षेत्र को अपने रंगकर्म से अलोकित करने वलो बाबा गर इस दुःख को भी अपनी असफलता या नाकामी बताते हुए अपने माथे लेते हैं तो लगत है जैसे अंजाने में उन्होंने अपना नाम 'गंगाधर' सार्थक कर दिया है। गंगाधर शंकर जिसने जनहित में विष-वमन किया और बाबा जिन्होंने रंगकर्म की निरंतरता और समृद्धि के लिए व्यक्तिगत नाकामी का विष-वमन करते हुए रंगकर्मियों को रंगकर्म की प्रतिष्ठा हेतु जुट जाने का आह्वान किया।

पत्रकार राहुल बारपुते, चित्रकार विष्णु चिंचाळकर और गायिका सुमन दांडेकर के साथ मिलकर बाबा ने 15 अगस्त 1955 के दिन एक सृजनशील अव्यवसायी नाट्य संस्था 'नाट्यभारती' की स्थापना की थी। पिछले पैंसठ वर्षों में 'नाट्य भारती' की स्थापना की थी। पिछले पैंसठ वर्षों में 'नाट्य भारती' ने देशभर में तकरीबन तीन हजार नाट्य मंचन किए हैं। आज भी नाट्यभारती श्रीराम जोग के कुशल निर्देशन में न सिर्फ सक्रिय हैं, वरन् उसने सफलता के नए मापदण्ड स्थापित किए हैं। इस संस्था में न सिर्फ करीबन तीन सौ से अधिक अभिनेता और अभिनेत्रियाँ नाट्य जगत् को दी है, वरन् लिटिल थियेटर के तहत 1957 से 1964 तक इन्दौर के दर्शकों को प्रतिवर्ष छह उच्चकोटि की नाट्य प्रस्तुतियाँ देकर नाट्यकर्म के क्षेत्र में एक अलहदा मिसाल कायम की है। बाबा ही वे पहले रंगकर्मी थे जिनकी दमदार प्रस्तुतियों के चलते महाराष्ट्र के समृद्ध नाट्यक्षेत्र में हिन्दी क्षेत्र में रचनारत् यहाँ के रंगकर्म को सम्मान दिया। नाट्यवाचन के अपने प्रभावी व अभिनव प्रयोगों से भी बाबा ने कथा कथन जैसे नए दालानों के द्वार खोले।

बाबा ने ताउम्र रंगकर्म के लिए जो समर्पित अवदान दिया उसकी दूसरी मिसाल यहाँ मिल पाना असंभव है। उनका रंगकर्म के प्रति उत्साह उनकी जीवटता इतनी प्रखर और प्रेरणास्पद थी कि उनकी उपस्थिति मात्र ही रंगकर्म क्षेत्र में एक स्फुरण पैदा कर देती थी। आज इन्दौर तथा राज्य में रंगकर्म में आयी सक्रियता, निरंतरता व श्रेष्ठता के मूल में बाबा के अवदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। उन्होंने अपनी नाट्याभा से यहाँ के नाट्य क्षेत्र को ताउम्र आलोकित किया। उनके द्वारा डाले गए नाट्य संस्कार आज भी यहाँ वहाँ पल्लवित हो रंगकर्म की खुशबू बिखेर रहे हैं। स

11-बी, राजेन्द्रनगर, इन्दौर-452012
मोबा. 9425314422/8085399770

नाटक के खातिर उनके हाथ गोवर्धन भी उठा सकते थे

डॉ. संजय जैन

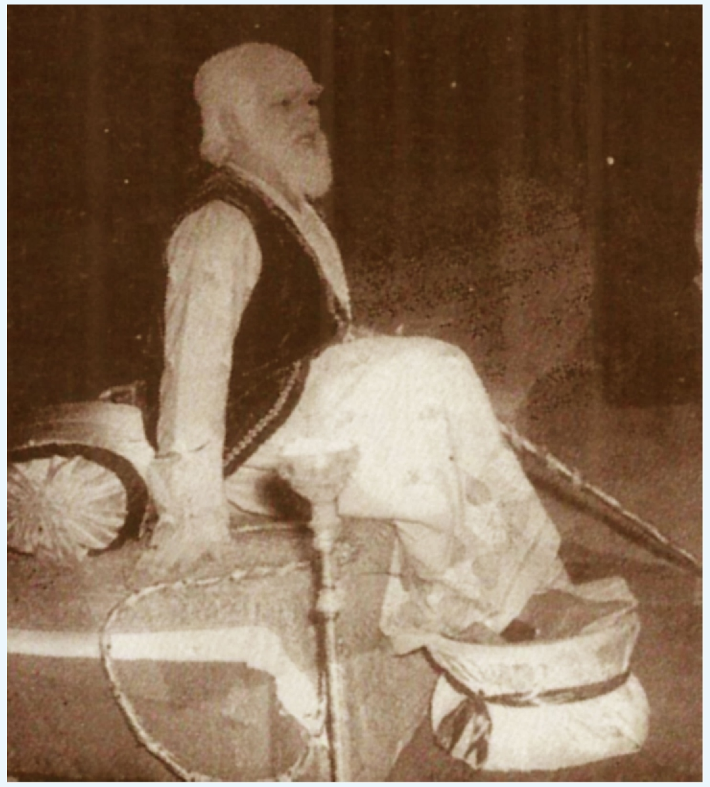

15 नवम्बर, 1996 की शाम साढ़े छह बजे इन्दौर के चोईथराम अस्पताल की सघन चिकित्सा इकाई में तमाम मशीनों के बीच खामोश लेटे और नली द्वारा ऑक्सीजन लेते उस कलाऋषि को देखना एक त्रासदायक अनुभव था, जिसकी साँसों में आजीवन रंगकर्म रहा। आयु कभी उनकी सक्रियता पर हावी न हो सकी। इसलिए यदि 77 वर्षीय बाबा डिके उम्र के 95वें वर्ष में भी हमसे बिछड़ते तो भी नाट्यक्षेत्र को वह अप्रत्याशित धक्का ही महसूस होता।

रंगकर्म के प्रति अपनी अदम्य इच्छाशक्ति, अनवरत् कर्मठता और एकनिष्ठ समर्पण के दम पर छह दशकों तक उनकी जीवंत कलात्मक रंगयात्रा अपने में कई अविश्वसनीय कीर्तिमान समेटे हुए है। मध्यप्रदेश तथा अन्य हिन्दीभाषी क्षेत्रों में जहाँ नाट्यकर्म को न तो अपेक्षित सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त रही और न ही यथोचित् आर्थिक आधार, वहाँ पिछले चार दशकों में पचहत्तर से अधिक नाटकों की लगभग ढाई हजार प्रस्तुतियाँ कर गुजरना बाबा साहब की अनन्य उपलब्धि रही। आजीवन चींटी की तरह उद्यमशील रहे बाबासाहब ने साधनहीनता, दर्शकों का अभाव, आर्थिक असमर्थता तथा सरकारी उपेक्षा का रोना कभी नहीं रोया। टी.वी. और फिल्म की आँधी में रंगकर्म की बिगड़ती सेहत से वे बेखबर भी नहीं थे, लेकिन चारों ओर बिखरी हताशा और व्यथा को झेलते हुए भी अपने लिए एक दायित्वपूर्ण भूमिका चुनने का साहस (बल्कि जुनून) और जीवटता उनमें रही। रंगमंच के उन्नतशील भविष्य के प्रति वे सदैव आस्थावान रहे। नई चुनौतियाँ तय करना और उनसे जूझना उनका स्वभाव था।

महानगरों में तमाम प्रायोजकों और सरकारी अनुदानों के सहारे टिकी नाट्य संस्थाएँ भी जहाँ एक दशक तक पूरा करने से पूर्व दम तोड़ देती हैं, वहाँ बाबासाहब की 'नाट्यभारती' द्वारा चार दशक तक रंग आंदोलन को उत्तरोत्तर गतिमान रखना एक बेजोड़ मिसाल है। बंबई और दिल्ली जैसे महानगरों में सक्रिय सत्यदेव दुबे जैसे निपुण निर्देशक भी हिन्दी रंगकर्म में नाट्यदर्शकों की उदासीनता से लेकर कई बार असंतुष्ट होकर निराशाजनक टिप्पणी करते रहे हैं। इस परिदृश्य में बाबा डिके की विरल उपलब्धि रही कि वे शेक्सपियर, बनार्ड शॉ, मोलियर जैसे विख्यात नाटककारों की कृतियाँ हिन्दी क्षेत्र के सुदूर ग्रामीण अंचलों तक ले गए और सफलता की कसौटी पर खरे उतरे।

बाबा साहब का नाट्यकर्म किसी साँचाबंद शैली में नहीं बँधा था। न पारसी थियेटर, न एबसर्ड, न प्रतीकात्मक, न कोई और। उनकी रंगशैली पर अन्य प्रभावों के बावजूद उसका व्याकरण और मुहावरा स्वयं उन्होंने गढ़ा था एवं मिट्टी से जुड़ाव के कारण दर्शकों ने उन्हें गहरा प्यार दिया। सीमित साधनों में असरदार प्रस्तुति उनका वैशिष्ट्य था। उनकी अभिनय प्रधान नाट्यशैली में नेपथ्य और पार्श्वभूमि हाशिए पर ही रहा। चमत्कारिक और तड़क-भड़कपूर्ण प्रकाश या संगीत की अपेक्षा कल्पनाशील और कलात्मक प्रस्तुति पर उनका गहरा आग्रह था। हालाँकि संगीत नाटकों की ताकत को महसूस करते हुए उसे न कर पाने का मलाल भी उनमें रहा। प्रयोगधर्मिता के नए-नए पहलू उनकी तमाम प्रस्तुतियों में उभरे और सराहे गए, लेकिन अपने नाट्यकर्म नाट्यकर्म को उन्होंने नारेबाजी से दूर ही रखा। उनके लिखित, अनूदित या रूपातंरित तमाम हास्य नाटकों में पैना सामाजिक व्यंग्य भी रहा, लेकिन नाटकों द्वारा समाज को बदल डालने जैसी किसी गलतफहमी के वे कभी शिकार नहीं रहे।

अपने अभिन्न मित्र मूर्धन्य पत्रकार राहुल बारपुते, कलागुरु विष्णु चिंचाळकर और प्रख्यात गायक पं. कुमार गंधर्व से घनिष्ठता के फलस्वरूप जिन सात्विक जीवनमूल्यों की संजीवनी शक्ति बाबा को मिली, उसका सदुपयोग उन्होंने रंगकर्म के क्षेत्र में किया। इसीलिए रंगकर्म को व्यावसायिकता के रोगाणुओं से बचाने के प्रति वे सदैव सजग रहे। उन्होंने न्यूनतम राशि लेकर भी मिशन भावना से गाँव-गाँव में सोद्देश्य नाटकों का सफल मंचन किया। ग्लैमर और प्रचारतंत्र से वे सदैव दूरी बनाए रहे। 'प्ले मस्ट गो ऑन' उनके जीवन का वेदवाक्य था।

बाबा सदैव मुझे एक कलाकार की सामाजिक प्रतिबद्धताओं के सटीक प्रतीक लगे। यह सरोकार उनके नाट्यलेखन में भी बिखरा रहा और जीवनशैली में भी छाया रहा। नाटक सामाजिक परिवर्तन का औजार है या नहीं? ऐसी बहसबाजी से बाबा दूर रहे, लेकिन सृजन के दायित्व को उनकी कलम ने बखूबी निभाया। उनकी स्वरचित कृतियाँ इसका प्रमाण है। कार्यालयीन जड़ता, दबाव, दमन और लालफीताशाही के रेशे उधेड़ता 'बड़ाबाबू' नाटक हो या ग्रमीण परिवेश और अर्थव्यवस्था में शहरी रोगाणुओं की घुसपैठ से बढ़ती 'खाई' हो, दस्यु जीवन की विवशता और बारीकियों को समेटता उनका 'मंगू' नाटक हो या छुआछूत और निरक्षरता से मुक्ति की कलात्मक अभिव्यक्ति पाता 'मयूरी' हो, युवाओं में नशाबंदी अभियान के समर्थन में लिखा उनका 'मूर्तिभंजक' हो या जनसंख्या वृद्धि पर व्यंग्य कसता 'जगन्नाथ आत्माराम' या वृद्धावस्था की मनोदशा पर सकारात्मक टिप्पणी करता 'अडगळ'। डेढ़दशक तक प्रतिवर्ष आनंदवन (श्री बाबा आमटे का नागपुर के समीप कुष्ठाश्रम) जाकर कुष्ठरोगियों के समक्ष अपनी नाट्यकृति का मंचन इन्हीं सरोकारों का हिस्सा रहा।

बाबा में जीवन का अनुशासन आश्चर्यजनक था। शायद यही उनकी

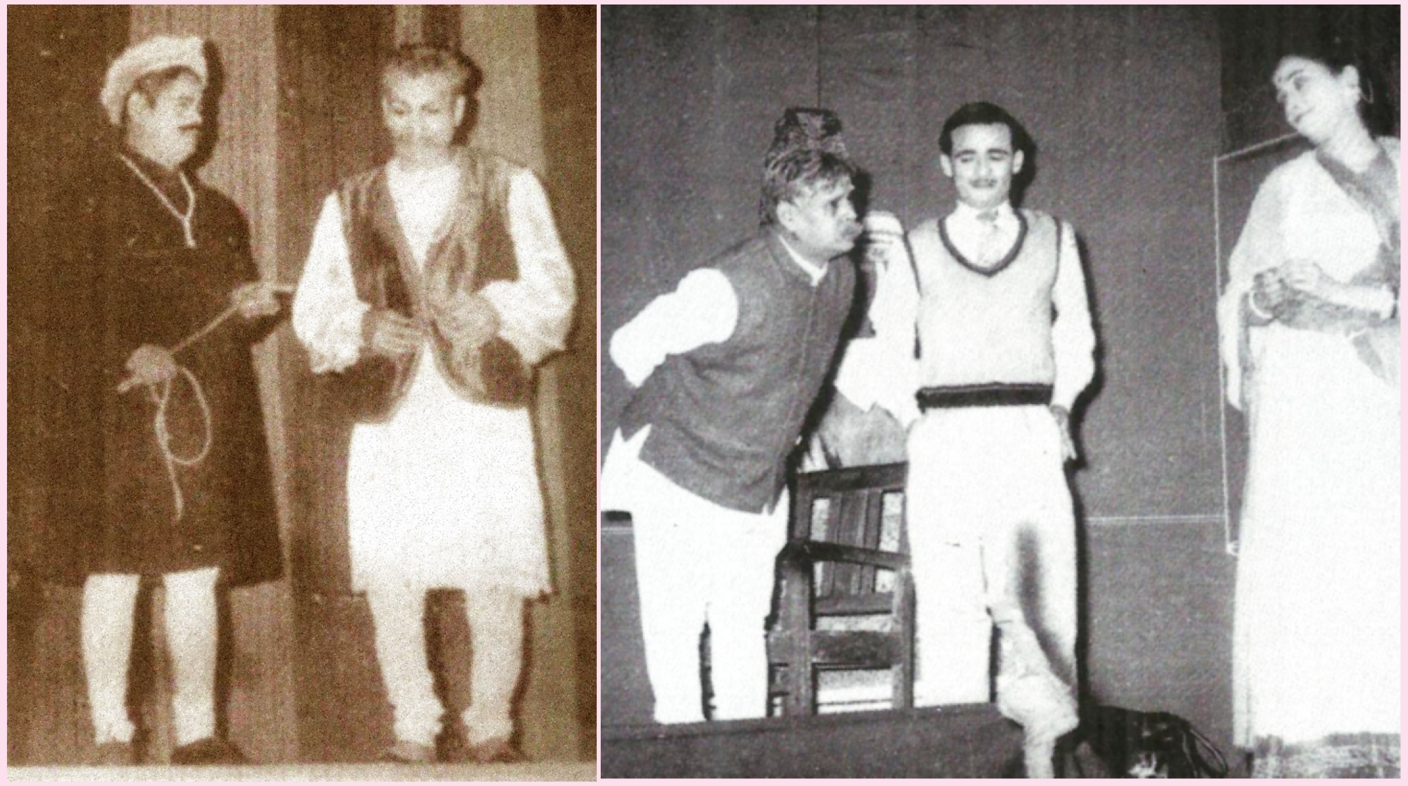

दीर्घकालिक सक्रियता और न चुकने वाले उत्साह का राज था। सात दशकों के सार्वजनिक जीवन ने उनमें एक मैदानी कर्मठता और व्यावहारिक सहजता ला दी थी। बाबा में एक ही व्यसन था, एक ही नशा था, एक ही लत थी - नाटक। नाटक के खातिर उनके हाथ गोवर्धन भी उठा सकते थे और जुठी पत्तलें भी। उनमें समयबद्धता और नियमिततता असाधारण थी। नाटक हो, सभा हो, शादी हो, सेमिनार हो। निर्धारित समय पर निर्धारित स्थान पर कोई पहुँचे न पहुँचे, लेकिन वहाँ बाबा देखे जा सकते थे। नाट्य मंचन करके भले ही रात तीन बजे घर पहुँचे हो, लेकिन सुबह पाँच बजे घूमने निकलने का क्रम टूटता नहीं था। बाबा शहर में हो, फिर चाहे एक ही कलाकार रिहर्सल पर पहुँचे, हर शाम तालीम तो होती ही। अपने पारिवारिक आयोजनों, शादी-समारोहों तक को बाबा ने तालीम के आड़े नहीं आने दिया।

बाबा एक अध्ययनशील कलाकार थे। नाट्य-साहित्य के अलावा भी उनके पठन-पाठन में उन्हें गहरी राजनीतिक-सामाजिक समझ प्रदान की थी। तीन-चौथाई सदी की तमाम अनुभवराशि और संस्मरण बाबा के रोचक किस्सों में झलकते थे। बातें गाँधी-नेहरू की हों या आपातकाल की, मुद्रा सामाजिक हो या साहित्यिक, बाबा का पैना विश्लेषण मेरी पीढ़ी के लिए ज्ञानवर्धन होता था। नाटक ने बाबा के जीवन को 'अर्थ' तो दिया, पर जीवन में 'अर्थ' न दिया। वैसे भी अर्थ (पैसा) कभी बाबा के जीवन में प्राथमिकता न पा सका। पैसे के प्रति निर्मोही होना संभवतः बाबा पर राहुलजी का प्रभाव था। जब छोटे-मोटे ऑर्केस्ट्रा फिल्मी गानों की नकल कर 10-12 हजार रु. में बाबा सा. शेक्सपीयर, इब्सेन या मौलियर को हजारों दर्शकों के बीच पहुँचा देते थे।

बारह वर्षीय बाबा डिके ने 1931 में 'अकांड तांडव' लिखकर लेखन कर्म का जो खाता खोला, वह 31 मौलिक नाटकों की रचना तक बदस्तूर जारी रहा जिनमें 'खाई', 'बड़ा बाबू', 'मंगू', 'तीसरा अंक', 'अभिनय', 'अडगळ' जैसे बहुचर्चित नाटक भी शामिल हैं। उन्होंने 22 नाटकों भाषांतरण किया एवं 22 नाटक रूपातंरित किए। पारंगत अभिनेता और निर्देशक होने के कारण उनके लेखन में भी सहज मंचनीयता बहुत आकर्षक रही। उनके पात्र, कथ्य, संवाद और घटनाविकास अपनी स्वाभाविकता और सहजता के कारण ठेठ ग्रामीण इलाकों में भी उतना ही अपनत्व पाते हैं, जितने कि शहरी समाज में।

सन् 1955 में 'नाट्यभारती' की स्थापना के साथ ही उनके रंगकर्म ने जो गति पकड़ी तो म.प्र., राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, गुजरात और आंध्रप्रदेश तक बाबा के बहुचर्चित नाटकों ने धूम मचाई। महाराष्ट्र नाट्य स्पर्धाओं में अनेकों बार उन्हें सर्वश्रेष्ठ निर्देशक एवं अभिनेता के रूप में पुरस्कृत किया गया। उनके नाटक, उनकी संस्था और कलाकार भी दर्जनों स्पर्धाओं में पुरस्कृत हुए लेकिन बाबा का असली पुरस्कार तो दर्शकों की दाद और ठहाके हुआ करते थे। उनके स्वरचित 'खाई' नाटक की 917 प्रस्तुतियाँ या एक ही वर्ष में 'मयूरी' नाटक के 98 प्रयोग होना दर्शकों पर उनकी पकड़ के सटीक उदाहरण हैं। उल्लेखीय है कि मंच पर महिलाओं को लाने का श्रेय बाबा डिके को है। पुरुषों द्वारा महिलाओं की भूमिका की परिपाटी को विराम देते हुए उन्होंने 1949 में जब 'पन्नाई' खेला, तो 9 महिला कलाकारों को मंच पर देखना हिन्दी प्रदेश के नाट्यक्षेत्र में एक अभूतपूर्व घटना थी। 'नूरजहाँ', 'बड़ा बाबू', 'कस्तूरीमृग', 'एक समाजद्रोही', 'रायकरवाडी', 'भूलभूलैय्या', 'केम्प', 'खाई', 'मयूरी' आदि नाटक उनकी रंगयात्रा में मील के पत्थर रहे, लेकिन वे मील के पत्थर गिनते ही कब थे, उनकी निगाह तो हमेशा मंजिल पर रही। पिछले कुछ वर्षों से उन्होंने एकपात्रीय अभिनय आरम्भ किया था। अंत तक वे रंगमंच के विकास की तमाम योजनाओं से भरे थे।

'लिटिल थिएटर' को पुनर्जीवित करने की कोशिश गणेशोत्सव की सांस्कृतिक ऊष्मा पुनःस्थापित करने के प्रयास, युवा नाट्यकर्मियों और बाल रंगमंच के प्रति उनकी योजनाएँ आदि सब बाकायदा जारी था कि नियती के क्रूर हाथों ने एक प्रकाश-स्तम्भ हमसे छीन लिया। वे कहते थे कि यदि उन्हें अगला जन्म मिला तो भी वे रंगकर्म ही करेंगे। ईश्वर उन्हें जल्दी पुनर्जन्म दे। स

नाटक आदमी के खून से जुड़ी विधा है

बाबा डिके से श्री नगेन्द्र आजाद की एक पुरानी बातचीत का अंश

गंगाधर महादेव डिके उर्फ बाबा डिके अपनी उम्र के सातवें दशक में भी बराबर सक्रिय और भरपूर ऊर्जा लिए हुए हैं। बाबा डिके ने इन्दौर की रंगरेखाओं में जितनी विपुलता, मनोयोग एवं सुदीर्घ साधना से रंग भरे हैं, वे लाजवाब हैं। मराठी समेत हिन्दी बाबा की रंगभाषा है। ग्यारह वर्षीय गंगाधर ने दो कम साठ बरस पूर्व जूनी इन्दौर के गणेशोत्सव में 'एकपात्रीय अभिनय' की जिस रंगयात्रा का आगाज किया था वह आज भी सतत् अविराम जारी है। बारह वर्षीय बालक गंगाधर ने 1930 में 'अकाण्ड ताण्डव' लिखकर जो रचनाधर्मिता अपनी लेखनी को सौंपी, उसे वह अथक् निभाती आयी है। मौलिक, भाषांतर, रूपान्तर रचना संसारों में यायावरी करते हुए।

पचपन से अधिक सालों की अपनी रंगसाधना में बाबा ने करीब 100 नाटकों के लगभग अढ़ाई हजार प्रयोग किये हैं। देश में इतनी रंगसाधना इन्दौर के अतिरिक्त केवल महाराष्ट्र में हुई। यहाँ बाबा के जीवन का महत्त्वपूर्ण यक्षप्रश्न भी समुपस्थित है। क्या वे अपने पीछे अपनी परंपरा का उत्तराधिकारी भी छोड़े जा रहे हैं? उनकी दैदीप्यमान उपलब्धियों की चकाचौंध में इसका परीक्षण कर लिया जाना भी अपरिहार्य है।

वे कहते हैं, 'आजादी पूर्व नगर एवं समूचे देश में तिलक द्वारा स्थापित गणेशोत्सव की आदर्श परंपरा रही है। चूँकि इन्दूर मराठी रियासत रही एवं तब अधिसंख्य नाटक मराठी में हुआ करते थे। राज्य के अहिल्योत्सव में शालेय स्तर की नाट्य स्पर्धा संयोजित की जाती, स्कूल से चयनित लड़के भाग लेते थे। नंदलालपुरा थियेटर उस वक्त काफी सक्रिय था। (महत्त्वाकांक्षी) 'बालोद्धार मण्डल' एक नामचीन रंग संस्था थी। पर हमने सोचा कि अपने से अधिक कलापारखी लोग भी हैं, उन्हें आगे लाना चाहिए। तब हमने 'बालोद्धार मण्डल' से निवृत्त होकर 15 अगस्त 1955 को 'नाट्यभारती' की नींव डाली। सोचा कि राहुलजी, पं. कुमार गंधर्वजी को हम साथ जोड़ें। तब हवाओं में प्रतिस्पर्धा थी। राहुलजी हमारे साथ 1950 में काम करने को तैयार हो गए थे। गुरुजी, कुमारजी वगैरह के साथ हमारा संगठन बनने लगा। 1953 में हमने डी.एल. राय लिखित 'नूरजहाँ' (हिन्दी एवं उर्दू नाटक) तैयारी के साथ खेला, तब होलकर कॉलेज के स्नेह सम्मेलन में डॉ. सुमन एवं डॉ. काटजू की महत उपस्थिति में इसका यादगार मंचन हुआ। यह मेरी जिंदगी का माईलस्टोन था। हमने फैसला किया कि अब से हम हिन्दी में भी रंगप्रयास करेंगे। पंचवर्षीय योजना के तहत तत्कालीन ज्वलंत डकैत समस्या पर 'मंगू' नाटक तैयार किया। इसमें डाकुओं द्वारा आत्मसमर्पण की कथावस्तु है। सामूहिक प्रयास के रूप में हमारा सबसे अच्छा नाटक 'खाई' है, जो 700 बार मंचित हुआ। 1955 में केन्द्रीय सूचना प्रसारण मंत्री श्री केसकर ने 'नाट्यभारती' को सादर निमंत्रण दिया था, पर तब की बात और थी। आज शासन, प्रशासन, विधायक, मंत्री सभी उदासीन हैं।

लगभग 60 वर्ष रंग सक्रियता में झोंक देने पर अपने जीवन की ढलती संध्या में बाबा निश्चित ही स्वमनन कर रहे हैं। बाबा की मोहक स्मृतियों की उपत्यका में पीछे मुड़कर देखना एक सुखद अनुभूति है। प्रस्तुत है विस्तृत बातचीत के संक्षिप्त, संपादित अंश-

सवाल - जब आपने नाटक खेलना और दिग्दर्शित करना प्रारंभ किया था तब और आज की स्थिति में इन दोनों मामलों में अंतर क्या है? मसलन स्टेज, (मंच), अभिनय, निर्देशन आदि में।

जवाब - जब शुरू किया था तब समर्पित कलाकार हुआ करते थे। अब ढीलापन आ गया है। कलाकार स्टेज को वैसाखी बनाकर सिनेमा और टी.वी. की तरफ जाना चाहते हैं। ग्लैमर के प्रति व्यामोह है। यों आज भी काफी लोग नाटक में काम करना चाहते हैं। पहले कलाकार तालीम व अभ्यास को पूरी प्राथमिकता देते, पर इधर यह नहीं हो रहा है।

आजादी के चालीस वर्ष मध्यप्रदेश की हिस्सेदारी में हम प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों मसलन कला, साहित्य, संस्कृति, शिक्षा, संगीत, चिकित्सा, रंगकर्म, खेलकूद, पत्रकारिता, फोटोग्राफी, विज्ञान, उद्योग और अन्य क्षेत्रों के कर्मठ व्यक्तियों के योगदान को रेखांकित करते हुए वर्तमान से जुड़े मुद्दों, बीते कल की यादों और भविष्य के उनके सपनों, कल्पनाओं पर आधारित बातचीत करेंगे। 40 सक्रिय कलाकार मेरे पास थे। आज 12 हैं। पहले प्रोफेशनल (व्यावसायिक) मंच भी रेग्युलरली (नियमित) आता था। उसका काफी असर था। हमारी 'नाट्यभारती' में गुरुजी के कारण आधुनिकता का भी प्रचलन था। प्रयोग के समय मंच सज्जा में तब्दीलियाँ होती रहती थीं। एंगल बदलते रहते थे। कई बार हमने बगैर मंच के भी नाट्य कर्म को कुशलतापूर्वक अंजाम दिया।

आपकी नाट्य शैलियों में परम्परागत और व्यावसायिक नाट्य शैली का प्रभाव आज भी है। आप इस सम्बन्ध में कुछ कहना चाहेंगे ?

यदि आज मैं एक्सपेरिमेंटल (प्रयोगवादी) नाटक करूँ तो दर्शक नहीं मिलेंगे। भोपाल में एक प्रोग्रेसिव कैंप भी लगाया था, पर निष्फल रहा। थियेटर में सुधार होना चाहिए पर यहाँ तो थियेटर ही एब्सेंट (गैरमौजूद) है। अक्सर पं. सत्यदेव दुबे तक को दर्शक नहीं मिलते।

ब्रेख्त ने पुरानी रंग स्थापनाओं को तोड़कर पहली बार राजनीति और वर्ग संघर्ष को नाटकों का केन्द्र बिन्दु बनाया और आज तो यदि किसी नाटक में सत्ता, राजनीति, भ्रष्टाचार और वर्ग संघर्ष का चित्रण न हो, तो उस नाटक को सिरे से खारिज कर दिया जाता है।

दरअसल मेरे विचार से तो ब्रेख्त की विचारधारा ने ही रंगमंच को तोड़ा-मरोड़ा है। पाश्चात्य मंच काफी आगे का है। प्रगतिशील है। भारत में ऐसा कम संभव दिखता है। तथापि बंबई में विजय तेंडुलकर, बंगला में बादल सरकार और कन्नड़ में गिरीश कर्नाड ने यही प्रयोग (खासकर तेंडुलकर) दोहराए हैं, परन्तु इसमें नाटक की मूल भावना को आघात पहुँचा प्रतीत होता है। देखिए आज जनमानस में रंगमंच के प्रति आस्था या इज्जत नहीं है। लोगों को जुटाने की ही समस्या है। कारण कि बहुत कम लोग ही पढ़े-लिखे हैं। अपना नाटक (जनता) के लिए हो तो, पर जब भी कानेटकर या तेंडुलकर वगैरह का नाटक चलता है तो अच्छा धंधा कर जाता है। जब दर्शक भी इसी दुरावस्था में आया तो नाटकों के अभाव से ही ऐसा होता होगा। दूजा कोई कारण नहीं। नाटकों के मामले में दर्शकों, 'सामाजिक संस्थाओं' का भी यही हाल है। अगर स्थान विशेष में रोटरी, लायन्स जैसी संस्थाएँ प्रतिमाह नाटक करने का निश्चय कर लें, निश्चय ही लोगों की इसमें रुचि बढ़ेगी। सरकार को भी नाटक की मदद करनी चाहिए। आज कलाकार अकेला पड़ गया है और यों चार्ली चैपलिन के नाटक में भी दर्शक गायब रहे हैं। 'नाटक' तो 'स्व-आनंद' लिए होता है।

मराठी नाटकों पर वल्गेरिटी (अभद्रता, अशिष्टता, अश्लीलता) का आरोप प्रायः लगता है, वह क्यों ?

यह तो दर्शकों पर ही अवलम्बित है। पहले 'लावणी और तमाशा' भी काफी प्रचलन में थे। आज भी मराठी नाटक-सिनेमा का प्रमुख दर्शक गाँवों में ही है। अच्छे नाटकों का काफी अभाव है। इसके लिए दर्शक नहीं, नौटंकी वाले दोषी हैं। इसी कारण वल्गेरिटी प्रधान नाटक प्रचलन में होकर खूब चल रहा है।

आप शासन के लिए प्रचारात्मक नाटक खेलते हैं?

अब तक हमने दिल्ली, पंजाब, राजस्थान, गुजरात एवं समूचे देश में घूम-घूमकर शासन के लिए 1500 नाटक खेले। नाटक तो नाटक ही रहेगा। हमने 75 फीसदी नाटक एवं 25 फीसदी प्रचार कार्य किया। प्रौढ़शिक्षा पर 'मयूरी' 75 प्रतिशत ड्रामा है। यही बात 'जगन्नाथ आत्माराम' पर भी लागू है। 'खाई' तथा डकैत समस्याधारित नाटक 'मंगू' में 25 प्रतिशत प्रचार था। आनन्द तो हमें इसमें खूब आया। अलग-अलग जगहों पर दर्शक बदलते रहे। हम दर्शकों की 'स्टडी' करते गए। आज हमारे लड़के अभिनय में जैसे भी हों, पर स्टेज पर डरते कतई नहीं हैं।

आजकल कैसी कट रही है?

अच्छी कट रही है। पर मैं ये मानता हूँ कि मेरा जीवन सफल नहीं रहा, क्योंकि आज नाटक कहीं नहीं है। नाम काफी हुआ, पर सफलता नहीं मिली। मेरा मनपसंद खेल 'बालोद्धार मण्डल' में आट्या-पाट्या रहा। यों बम्बई 1945 में मैं कुश्ती चैम्पियन रहा हूँ और नाटकों में तो बाल गंधर्व ही मेरे आदर्श रहे हैं।

नाटकों का चस्का आपको लगा कैसे था?

वो कहते हैं न 'कुछ तो होता है दीवाने पे जुनून का असर और कुछ लोग उसको 'दीवाना' बना देते हैं, मतलब शुरूआत में शौक था, पर जब लोगों ने पीठ ज्यादा ही थपथपाई तो हम आगे बढ़ते चले गए। पं. कुमार गंधर्व, राहुल बारपुते एवं श्री विष्णु चिंचाळकर बृहत्त्रयी के साथ-साथ हम आगे बढ़ते चले गए और मन में आज भी कुछ 'जुम्बिश' अभी बाकी है। रंगकर्म के व्याख्याता और अध्येता बाबा डिके मानते हैं कि टी.वी. सम्प्रेषण का एक बेहद सशक्त माध्यम है पर इसका जमके दुरुपयोग हो रहा है। इधर हिन्दी रंगमंच खस्ता हाल में है। प्रदेश में ही देख लीजिए। भोपाल, भोपाल का ही रंगमंच कहाँ है? वहाँ कला परिषद् भी है। नाटक वस्तुतः मनोरंजन का माध्यम है, पर सामाजिक बदलाव के लिए इसे प्रयुक्त किया जा सकता है।

(रेखांकन - संदीप राशिनकर)

भविष्य के लिए कुछ योजना है?

अगले कुछेक सालों में हम इन्दौर में एक 'अखिल भारतीय हिन्दी नाट्य सम्मेलन' की योजना बना रहे हैं। इन्दौर में एक 'नाट्य-संकुल' का निर्माण भी चल रहा है। आज भी तरुणाई की आभा लिए 'नाट्यभारती' और उसके पर्याय बाबा डिके का रंग यात्रा-प्रवाह गतिमान है। उसके अपने सपने हैं। मसलन् अगले सातेक सालों में एक उत्तराधिकारी तैयार करना, वगैरह। बाबा कहते हैं नाटक, आदमी के खून से जुड़ी विधा है और इसी रंग-संस्कार से जुड़े रहना ही मेरा जीवन है।

चालीस वर्ष पूर्व जब देश ने आजादी हासिल की थी, तब से लेकर अब तक राष्ट्र ने काफी कुछ पाया है। विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न क्षेत्रों में अपने योगदान से समाज को, राष्ट्र को काफी कुछ देकर अधिक सम्पन्न बनाया है। स

(लेखक इन्दौर के वरिष्ठ पत्रकार व इतिहासकार रहे हैं।)

सुधिजनों की दृष्टि में बाबा डिके

बाबा डिके रंगकर्म के मिशन का नाम है

महाराष्ट्र सरकार की ओर से होने वाली नाट्यस्पर्धा याने रंगकर्म का समुद्र मंथन ही है। इस समुद्र मंथन से रंगकर्म के कितने ही रत्नों ने निकलकर नाट्य सृष्टि को समृद्ध किया है। बाबा डिके के रूप में सरकारी स्पर्धाओं के माध्यम से मुम्बई के नाट्य रसिकों को मिला एक चमकदार रत्न है। एक साल स्पर्धा में इन्दौर के 'नाट्य भारती' नाट्य संस्था ने 'कारकून' नाटक को मंचित किया जिसे देखकर मुम्बई के नाट्य दर्शक अचंभित रह गये और उसी दिन मुम्बई के नाट्यरसिकों के हृदय पर बाबा डिके का नाम अंकित हो गया। सिर्फ यह नाम अंकित नहीं हुआ, वरन् मुम्बईकर उस नाम से आश्चर्यचकित हो गए, क्योंकि 'कारकून' का लेखक, 'कारकून' का निर्माता, 'कारकून' का निर्देशक और 'कारकून' की प्रमुख भूमिका निभाने वाला और नाट्य विषयक यह विविध भूमिकाएँ सार्थकता से निभाने वाला बाबा डिके नाम का यह कलाकार निश्चित ही कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता। वह निश्चित ही कोई असाधारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ही हो सकता है। वह होता है 'पुरुषोत्तम'। बहुत कम व्यक्ति ऐसे होते हैं जो किसी मिशन को लेकर ही जीते हैं। बाबा डिके का मिशन है 'नाटक'। उनका जन्म ही नाटक के लिए ही हुआ है और वे जन्मभर नाटक को ही जिएँगे, उनके जीवन से अगर नाटक को अलग कर दिया जाये तो शायद वहाँ सिर्फ शून्य ही बचेगा!

* बाबा डिके एक जन्मजात स्वयंभू व्यक्तित्व हैं, क्योंकि न तो अभिनय में और न ही निर्देशन में उनका कोई गुरु है।

* मध्यप्रदेश लोक नाटक अकादमी द्वारा बाबा को 'नाट्याचार्य' पदवी देकर उनके रंगकर्म के दीर्घ अवदान का सम्मान किया है।

वा.य.गाडगिळ

बाबा साहब, नाटक जारी रहेगा

* बाबा के निधन से रंगकर्म की जीवित किंवदती का पटाक्षेप हो गया। रंगकर्म के क्षेत्र में सबसे अधिक उत्साही भी बाबा डिके थे और सबसे अधिक अनुभवी भी बाबा डिके। पूरे मालवांचल तो में वे रंगकर्म के पितामह थे।

* 'बालोद्धार रंगमंडल' से आरंभ कर बाबा साहब ने 'नाट्य भारती' की स्थापना की और 50-55 वर्ष निरंतर मंच-सक्रिय रहे। प्रारंभ में मराठी नाटकों में रुचि ली, फिर शीघ्र ही अपने नाटक 'नूरजहाँ' के साथ पचास के दशक में हिन्दी में आ गए। फिर हिन्दी में ही बने रहे। तमाम हिन्दी भाषियों से अधिक हिन्दी नाटक इस 'मराठी माणूस' ने इन्दौर और आस-पास खेले और रचे।

* कुमार गंधर्व, राहुल बारपुते, विष्णु चिंचाळकर और बाबा डिके ऐसे नाम हैं जो जब भी याद आते हैं, इन्दौर को रूप देते हुए प्रतीत होते हैं और याद किये जाते हैं।

* जब बाबा साहब अकेले पड़ गये, तब उन्होंने बिना हार माने, बिना किसी की परवाह किए एकल अभिनय द्वारा स्वयं को बनाए रखा। इसी सिलसिले में उन्होंने शरदजी के व्यंग्य निबन्धों को भी अपने नाटकों में ढाला और दर्शकों को प्रभावित किया। वे एकमात्र ऐसे रंगकर्मी थे जिन्होंने कभी फिल्मों या टी.वी. का सपना नहीं देखा। रंगकर्म उनके लिए एक संपूर्ण कार्य था, जिसे वे अबाधित करते रहना चाहते थे और होता देखना चाहते थे।

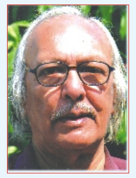

* उनके साथी घोडगाँवकर का जिस दिन निधन हुआ उस दिन बाबा का शो होना था। साथी रंगकर्मी चाहते थे कि शो स्थगित कर दिया जाए पर बाबा साहब निर्ममतापूर्वक अपना काम करना चाहते थे। उनका संकल्प होता था- शो मस्ट गो ऑन!

* बाबा साहब, हम संकल्प करते हैं, आपके ही शब्दों में कि आप हमारे साथ नहीं हैं, पर नाटक जारी रहेगा।

प्रो. सरोजकुमार, इन्दौर

मृत्यु तो एक मध्यांतर है

* उनकी पाटदार आवाज के रेशों के भीतर कहीं बहुत शुरू से ही यह सहज-सी लगने वाली खनक छुपी हुई थी कि वे चार लोगों की नगण्य-सी उपस्थिति को भी प्रेक्षागृह की भीड़ के समानांतर रखकर बोला करते थे।

* उनसे बात करते हुए लगता था, हम घर, सड़क या मैदान नहीं किसी रंगशाला में चुपचाप खड़े हैं और वे अपने हिस्से के संवाद बोल रहे हैं।

* उनकी आवाज एक आसरे की तरह लगती थी- जहाँ कोई चिंता से भरा शख्स ठहर और ठिठक सकता था।

* उनकी हँसी सुनकर मुझे हमेशा लगा, वह हँसी नहीं, हँसी का एक अलक्ष्य इफेक्ट है। इसका कारण कदाचित् यही था कि रंगकर्म उनके साँय-साँय करते खून के हर कतरे में शामिल था।

* वे अपने भीतर हजारों दर्शकों की उपस्थिति अनुभव करते थे। शायद ऐसे अनुभव के बाद कोई शायद ही अकेला रह सकता हो।

* पिछली बार उनसे मैंने आकाशवाणी के एक वार्ताक्रम के लिए आग्रह किया। 'मिले अगर मुझे जीवन दोबारा' शीर्षक की इस वार्ताक्रम के लिए उन्होंने एक गहरी एकाग्रता से लिखा और अपनी इच्छाओं पर पूर्ण विराम लगाये जाने के विरुद्ध यह भी लिखा कि मैं दोबारा जीवन जी कर भी नाटक ही करूँगा, क्योंकि अभी मैंने नाटक तो शुरू ही किया है। सिर्फ परदा गिरा है। यह मध्यांतर है और मध्यांतर को मैं मृत्यु नहीं मानता।

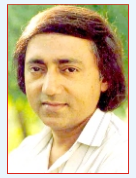

प्रभु जोशी, इन्दौर

सोलह साल के बाबा डिके

* मेरे मित्र श्री बाबा डिके के साठ वर्ष के होने पर उनके स्नेहियों ने षष्ठीपूर्ति समारोह करने का निर्णय लिया है यह जानकर प्रसन्नता हुई। जन्म तारीख की दृष्टि से भले ही बाबा के जीवन में साठ की गिनती शुरू हो गई है, किन्तु बाबा डिके नाम का जो कलाकार है उसकी उम्र मात्र सोलह से बीस के मध्य है। आदमी बढ़ते अनुभव से वृद्ध होते हैं पर अनुभव के साथ युवा होते जाने वाले व्यक्ति बहुत ही कम होते हैं और बाबा उनमें से ही एक हैं।

* नाटक ही उनका उद्देश्य, उनका धर्म और चिंतन का ही नहीं चिंता का भी विषय है। शायद उन्होंने 'संसार' शब्द का अर्थ ही 'नाट्यसंसार' ये लगाया है।

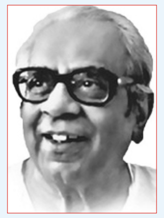

* नाट्य लेखन और उसके जगह-जगह मंथन की धुन में शायद बाबा को भी यह एहसास नहीं हुआ होगा कि वे अब साठ बरस के हो गये हैं।

* रंगमंच पर अभिनेता मेकअप कर स्वयं को रंगकर मंच पर आते हैं पर इन क्षेत्र में स्वयं के अंतरंग को रंगकर्म में रंगकर मंच पर प्रवेश लेने वाले बिरले ही होते हैं। बाबा अंदर-बाहर पूर्णतः रंगकर्म में रंगे हुए हैं।

पु.ल. देशपाण्डे
(मराठी के वरिष्ठ कवि)

कलादृष्टा बाबा डिके

* बाबा कलादृष्टा हैं, यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा। 1955-56 के काल में काले परदों के नेपथ्य पर कोई भी साधनों के प्रयोगों के बिना सिर्फ अभिनय के जोर पर नाटकों को सफल करने वाले बाबा के अलावा कोई नहीं थे। महाराष्ट्र में तो ऐश्वर्यशाली सेट्स लगाकर नाट्य मंचन होते थे।

* स्पॉट लाइट्स की महत्ता क्या होती है इसे बाबा ने अपने दर्शकों को अपने मंचनों के माध्यम से समर्थता से मात्र बताया ही नहीं था, वरन् महाराष्ट्र नाट्य स्पर्धा में इन्दौर का लोहा मनवाया था। इस साल इन्दौर वाले नाटक में क्या नया करेंगे इसकी उत्सुकता बाबा ने नाट्यरसिकों के मन में निर्माण की।

* नाट्य वाचन भी बहुत प्रभावी व असरदार हो सकता है कहने वाले बाबा ने नाट्य वाचन की अलहदा महत्ता को अपने नाट्य वाचन से स्थापित किया। उनके द्वारा पैंतीस लोगों के सामने 'रायकरवाडी' नाटक का नाट्यवाचन आज भी स्मृति में है। आगे बहुत सालों बाद पद्मश्री पु.ल.देशपांडे द्वारा 'बटाटयाची चाळ' के कथाकथन से सभी परिचित हुए, किन्तु मूलतः नाट्यवाचन का अभिनव विचार बाबा की ही देन थी।

* आप स्वयं ही अच्छे नाट्य लेखक होने के बावजूद आप नाट्य रूपांतरण व नाट्यानुवाद के चक्कर में क्यों पड़ते हैं, यह प्रश्न पूछते ही बाबा ने कहा- बेटे नये नाटक लिखने वाले काफी नाट्य लेखक मराठी को मिले हैं, किन्तु विदेशी भाषाओं के इन अलौकिक नाट्य-साहित्य का आनंद भी अपने नाट्य रसिकों को मिलना चाहिए ना ?

अनुराधा वि. आपटे

स्व. बाबा डिके से संबंधित समस्त सामग्री वरिष्ठ चित्रकार, कवि एवं समीक्षक श्री संदीप राशिनकर, इंदौर के सौजन्य से प्राप्त - संपादक

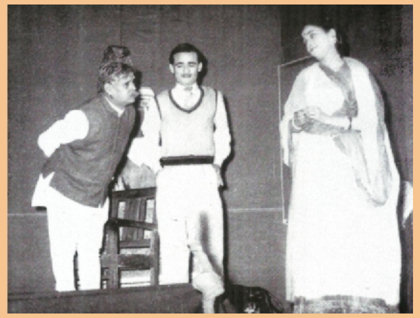

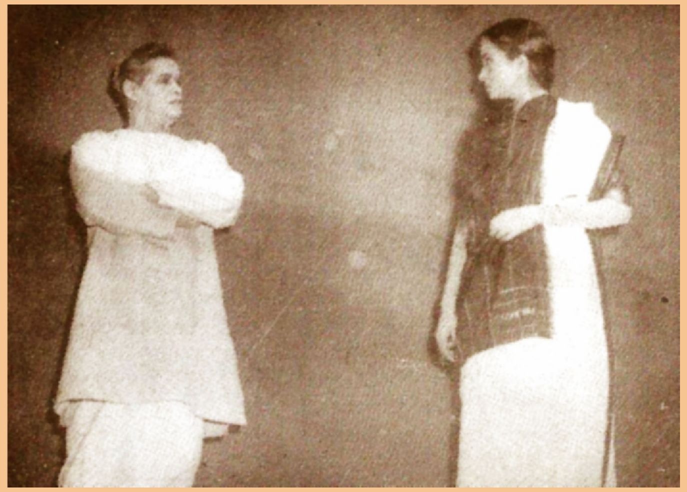

भास्कर चौधुरी की कविताएँ

"भास्कर चौधुरी की कविताओं में प्रगतिशीलता एक गहरी अन्तर्दृष्टि की तरह व्याप्त है। वे इस जरूरी चेतना को अपनी कविताओं में कहीं भी उथला नहीं होने देते। बगैर किसी नारे या घोषणा के वे इसे अपनी कविता के व्यक्तित्व का सार बनाते हैं। 'बचने ही चाहिए बच्चे/ भले ही मारा जाए ईश्वर।' (ईश्वर) जैसी पंक्ति के माध्यम से कवि थोथी नास्तिकता जाहिर नहीं करता बल्कि अपने-अपने ईश्वर या खुदा को उसकी सही जगह बता देता है। सरल-सी दिखने वाली यह कविता वर्तमान सन्दर्भो में बेहद प्रासंगिक हो उठती है। 'उसने कहा' कविता में बहुत गहरा स्त्री विमर्श संजोया गया है। स्त्री की अस्मिता के चारों ओर खींच दी गई लक्ष्मणरेखा को यह कविता बेबाकी और निर्भीकता से पार करती है। इस कविता में स्त्री के अस्तित्व, उसके संघर्ष और जिजीविषा को अद्भुत विस्तार दिया गया है। कितना दिलचस्प है यह जानना कि हमारी भाषा में 'पुरूषार्थ' शब्द तो है लेकिन स्त्री के संदर्भ में वह शब्द क्या होगा? 'स्त्री का पुरूषार्थ' तो कतई नहीं। 'वे' कविता सत्ता के शोषण-तंत्र का बेबाक दस्तावेज है जिसमें जनसाधारण की असीम सत्ता को शासक वर्ग द्वारा भेड़-बकरी-मेमने से अधिक नहीं आंका जाता भले ही उसके कंधों पर सवार होकर वे सिंहासन तक पहुँचे हों। आम जनता को जैसे-तैसे जी कर अंतत: हलाल होने के लिए ही जीवित रहना है। पूरी कविता में एक रोष अन्तर्व्याप्त है। 'इन दिनों' और 'आदिवासी' कविताएँ कवि के स्वानुभवों का पता देती हैं। आदिवासी बहुल क्षेत्र छत्तीसगढ़जो इन दिनों नक्सलवाद, शोषण और विस्थापन का गढ़बना हुआ है, की व्यथा एक आर्त्तनाद के रूप में इन कविताओं में अभिव्यक्त होती है-? धान का कटोरा/ लगता है जैसे रह गया है चम्मच के आकार का।' सत्ता द्वारा रचे गए आकर्षक शोषण-तंत्र को कवि बेबाकी से बेनकाब करता है जिसमें महुआ-माड़ी और एक रूपया किलो चावल का तिलिस्म है जिसे बेधना मुश्किल है। 'पेड़ों ने किया हो ऐतराज शायद ही कभी ' जैसी मार्मिक पंक्ति आदिवासियों की पर्यावरण चिन्ता की सटीक परिभाषा है। आदिवासियों के प्रकृति के साथ सरोकार लालच नहीं जरूरत पर आधारित होते हैं। वे वनोपज काटते नहीं बीनते हैं। जंगल में बनी सड़क उनके विस्थापन का विनाशक मार्ग खोलती है। 'जन्मदिन' और 'शुतुरमुर्ग' अपेक्षाकृत अंडरटोन कविताएँ हैं जिनमें मनुष्य के स्वार्थ और उत्खनन की प्रवृत्ति पर कटाक्ष किया गया है। मनुष्य की मतलबपरस्ती और कृतघ्नता को रेखांकित करती ये कविताएँ यथार्थ से पलायन कर रहे मनुष्य पर गहन वक्रोक्ति है। 'मुसलमान' कविता एक और प्रासंगिक कविता है जो इस देश में बरसों से चली आ रही साम्प्रदायिक जुगलबंदी पर प्रहार करने वाली शक्तियों से दो-चार होती है। यह कविता देश में चल रहे अलगाववादी नफरतपरस्त राजनीति पर कड़ा प्रतिप्रहार है। 'हँसी' एक मार्मिक कविता है जिसमें हर अट्टहास के पीछे छुपे दर्द और संत्रास को उघाड़ा गया है। 'हँसो' की आवृत्तियाँ लिए इस कविता में हमारे समय की अनेक विभीषिकाओं को खिलंदड़े अंदाज में अभिव्यक्त किया गया है।

गौर से देखें तो हर अट्टहास अंतत: एक करूणा में छलक उठता है। यह करूणा कम्पनी गार्डन में 'लाफ्टर क्लब' के चालीस बूढ़ों की हँसी में ढूँढी जा सकती है जो हाल ही दाभोलकर, गौरी लंकेश, पानसरे या कलबुर्गी की हत्या के समाचार पढ़कर जमा हुए हैं। 'पुल' कविता में एक टूटा हुआ पुल है जो व्याप्त भ्रष्टाचार का प्रतीक है। उस पर मौत का खेल खेलकर वे उस पार उन देशों के पुलों का पाठ पढ़ने जा रहे हैं जहाँ पुल टूटने के लिए नहीं पार करने के लिए ही बनते हैं। 'तानाशाह' कविता में जबर्दस्त 'विट' है जो सत्ता के मद में अंधे राजा की सनक को व्यक्त करती है-इस छोटी-सी कविता की अंतिम पंक्ति 'ऐसा सोचता है...' इस कटाक्ष की चरम परिणति है। भास्कर चौधुरी हमारी अपनी विकृतियों, विभीषिकाओं और क्रूर यथार्थ को बेहद सलीके से अपनी कविताओं में अभिव्यक्त करने वाले जरूरी कवि हैं।"

निरंजन श्रोत्रिय

ईश्वर

सोचता हूँ
एक सीढ़ी लगा लूँ
धरती से स्वर्ग तक
और उतार लाऊँ
ईश्वर को

ढाल बनाकर खड़ा कर दूँ
उन बच्चों और उस बच्चे के बीच
जो ईश्वर और खुदा की लड़ाई में
चाकू लिए तैयार खड़े थे...

बचने ही चाहिए बच्चे
भले ही
मारा जाए ईश्वर।

उसने कहा

उसने कहा-
बहुत कड़क है वह
मर्द की तरह डाँटती है

उसने कहा-
रौबदार है उसकी आवाज
वह 'मैनली वुमन' है
बच्चे डरते हैं उससे

उसने कहा-
कितनी ताकत है उसके पास
बुलेट चलाती है फर्राटे से
मर्द की तरह

उसने कहा-
क्या खेलती है वह
खेलते-खेलते चीखती है
मर्द की तरह

उसने कहा
वह छिपाती नहीं कुछ भी
कितना बोल्ड लिखती है
मर्द की तरह

उसने कहा-
बच्चों को पाला है उसने अकेले
पिता की तरह

कहा नहीं उसने-
वह औरत है
औरत की तरह।

वे

वे भेड़ें नहीं हैं
जिनकी ऊन उतारी जाती है

वे साँप नहीं हैं
जिनकी खाल खींची जाती है

वे बकरियाँ और मेमने भी नहीं हैं
जिन्हें जिबह करने से पहले
नरम कोमल पत्तियाँ खिलाई जाती हैं

वे आदमी हैं
जिनकी शक्ल वनमानुष से कम
आदमी से ज्यादा मिलती है

दरअसल वे आदमी ही हैं
जिनकी खाल खींची जा रही है
लात और घूँसे बरसाए जा रहे हैं
जिबह किया जा रहा है
पत्तियों से मिलता-जुलता कुछ खिलाकर

वे जीवित हैं / जिबह से पहले

वे जीवित हैं क्योंकि
जिबह से पहले
जरूरी है उनका जीवित रहना।

इन दिनों

इन दिनों कम दिखाई पड़ रहे हैं
साँप, छछुंदर, नेवले और खरगोश
बिल्लियाँ भी गिनती की बची हैं घरों में
आँगन से जा चुकी हैं कबकी गोरैया,
पण्डुकी और मैना
इन दिनों जब कंक्रीट के जंगल तेजी से बढ़रहे हैं
सुनाई पड़ने लगी हैं जंगल के बाहर भी
जंगल में चल रही धाँए धाँए
दूर तक पक्की सड़कें भी थरथराने लगती हैं
गोलियों की गूँज और आरडीएक्स के धमाकों से
अखबारों के मुखपृष्ठ दिखाई देते हैं लाल

इन दिनों मारे जा रहे हैं आदिवासी
कभी नक्सलियों तो कभी
मुखबिरों के नाम पर
छीज रहे हैं धान के खेत
धान का कटोरा रह गया चम्मच के आकार का

गायब हो चुके हैं खेल के मैदान
उनकी जगह इमारतें, शॉपिंग मॉल और स्टेडियम
जहाँ खेला जा सकता है आईपीएल
जो पी जाते हैं एक दिन में
दस धान के खेतों का पानी

तरक्की की राह पर देश
जंगल, आदिवासी और खेतों की कीमत पर।

आदिवासी

महुआ सरई तेंदू चार छिंद
अब तुम नहीं बीन सकते आदिवासी
सूखी लकड़ियाँ तुम बटोर नहीं सकते
काटना तो दूर की बात
हालांकि पेड़ों ने ऐतराज किया हो
शायद ही कभी
क्योंकि जरूरतें तुम्हारी कम
जरूरत से ज्यादा तुमने कभी
काटा ही नहीं

बंदर चीतल हिरन बारहसिंगा बायसन
जैसे समझ है उन सभी को
तुम्हारे जीने के सामानों की
पर कभी समझ नहीं सका शहर का आदमी
कंक्रीट के जंगलों को छोड़
अब उसका मन तुम्हारे जंगल पर आ गया है
तुम्हारी औरतों के शरीर का गोदना
शहर के आदमी के बाजुओं पर दिखाई देने लगा है
तुम्हारी कबड्डी और तीरंदाजी
शहरियों ने अपना ली है
तुम्हें नक्सली समझ लिया गया है
माटाचटनी की तरह
सिल और लोढ़े के बीच पिसते तुम आदिवासी
तुम्हें तुम्हारे माटाचटनी के स्वाद से
महरूम किया जा रहा है
और तुम माड़ी और महुआ के मद में मत्त
सरकार से एक रूपये किलो चावल पा
सड़क किनारे मिट्टी में लहालोट हो रहे हो।

चूड़ियाँ

बाजार से बाहर निकाली जा रही है
काँच की चूड़ियाँ
लाल नीली हरी पीली
क्या चूड़ियों के आवृत्त से ऐसे ही
बाहर निकल रही हैं लड़कियाँ
या चूड़ियाँ बनाने वालों की तरह ही
फँसी हुई आवृत्त के भीतर
बंद आँखों से देखती हुई सपने रंगीन
रंगीन! जैसे चूड़ियाँ।

जन्मदिन

हम सो रहे हैं या
जाग रहे हैं और
ले रहे हैं उबासियाँ या
बेतहाशा दौड़ रहे हैं

हम डाल रहे हैं धरती पर
अपने-अपने हिस्से को बोझ

हम डाल रहे हैं धरती पर
अपने-अपने हिस्से का बोझ

हम काट रहे हैं अपने और
गाहे-बगाहे दूसरों के हिस्से की धरती
मानो धरती एक केक है
और हम मना रहे हैं
अपना अपना जन्मदिन।

शुतुरमुर्ग

मैंने बंद कर ली आँखें
और सोचा शुतुरमुर्ग की तरह
कि अंधी है दुनिया

जम्हाई ली मैंने
और सोचा चिड़ियाघर में
कैदी शेर की तरह
उबासियाँ ले रही है सारी दुनिया

चुप हो गया मैं
और सोचा सोतनिद्रा में पड़े
ध्रुवी भालू की तरह
कि इन दिनों ऐसी ही है दुनिया।

मुसलमान

मेरे पड़ोसी का बच्चा मुसलमान है

मुझसे सौ किलोमीटर दूर
बिलासपुर में रह रहे जो
सबसे अच्छे इंसान हैं
वह भी मुसलमान है
उनका नाम शाकिर अली है

मेरे पड़ोसी का बच्चा
मुझसे चिपटकर प्यार करता है
और दिल के मरीज शाकिर अली मुझसे मिलने
बिलासपुर से मेरे यहाँ आ जाते हैं

टीवी पर रात दिन चल रही है
काँव-काँव झाँव-झाँव
मैं हिन्दू तू मुसलमान
हम हिन्दू वे मुसलमान
तू चले जा पाकिस्तान

बच्चे के घर जब यह सब चलता है
वह अम्माँ को कह कर टीवी पर सिंचान देखता है
और शाकिर अली कंधे पर झोला लटकाए
पत्नी की मौत के बाद एकदम अकेले
बूढ़े मार्क्सवादी राजेश्वर सक्सैना के घर
उनकी नई किताब 'विज्ञान का दर्शन
एंगेल्स का योगदान पर चर्चा
और कुछ नया जानने या सीखने निकल पड़ते हैं।

हँसी

बाबा कहते हैं हँसना जरूरी है
दो वक्त खाने की तरह
तो हँसो
हँसो हँसो ठहाके लगा-लगा कर हँसो
दाँत निपोर-निपोर कर हँसो
हँसो बंद कमरे में
खुले में हँसो
कम्पनी गार्डन में
दस-बीस-तीस-चालीस मिल कर हँसो
हँसो कि लेटे हो तब भी
कि उठ कर बैठे हो
या बैठ कर उठे हो
घास में लोट-लोट कर हँसो
कीचड़ में लथपथ होकर हँसो
कूद-फांद कर
हाथ-पैर हवा में फेंककर
कि मुट्ठियाँ भींच कर या खोलकर हँसो
पर हँसो
हँसो कि बाबा कहते हैं
जरूरी है हँसना
कि बच्चा हँसता है माँ के पेट में
जैसे तैर रहा हो स्वीमिंग पूल में
और हँसते हँसते लात जमाता है पानी में
वैसे ही तुम भी हँसो
हँसो जैसे स्वीमिंग पूल हो हँसी का
और तुम लगा रहे हो समरसाल्ट हँसी के
हँसो कि हँसने लायक ही है
बाहर की दुनिया
चार्ली चैप्लिन की तरह हँसो
कि जिसके रोने में परदे पर
हँसी दिखाई देती है दुनिया को
ऐसे हँसो कि भूल जाओ
मर रहे हैं बच्चे और नौजवान
कीड़े-मकोड़ों की तरह बिलबिलाकर
किसी पेस्टिसाइड की मार पड़ी हो जैसे
हँसो ऐसे कि खो जाए तुम्हारी हँसी में
गौरी लंकेश का हँसता हुआ चेहरा
और तुम्हारी आँखों के रेटिना से पुँछ जाए
ऐसी कोई भी तस्वीर जहाँ
गौरी लंकेश पानसरे दाभोलकर या कलबुर्गी की
खून सनी लाशें पड़ी हों फर्श पर
या धरती पर धूल में लिथड़ी
हँसो केवल हँसते रहो
कि हँसना जरूरी है दो वक्त के खाने की तरह
बाबा कहते हैं...।

पुल

पुल ही तो है जो ढह गया है बीच से
सप्ताह भर से चल रही
बेरोकटोक बारिश के बाद
जिसे अब पार कर रहे हैं बच्चे स्कूल के
बाँस की दो बल्लियों के सहारे
बीच जिसके बाँधी है बड़ों ने चंद खपच्चियाँ
जहाँ से साफ देख पा रहे हैं बच्चे
उफान मारती नदी का प्रलाप
पर बच्चों के लिए यह भी हो एक खेल शायद
काँपते पैरों और हाथों के बल खेलने का खेल
खेल मृत्यु को बहुत करीब से देख पाने का
खेल उस पार जाने का
(इस पार आना फिलवक्त तो कम-से-कम
उनके खेल में शामिल नहीं)
जहाँ एक शिक्षक इंतजार कर रहा है
बच्चों का जिन्हें वह परिचित कराएगा
दुनिया के नक्शे में पुलों से
जिन पर गर्व करते हैं उन पुलों के देशवासी
और जिन पर बेरोकटोक आ जा सकते हैं
उन देशों के हजारों बच्चे।

तानाशाह

उससे
न चींटियाँ डरती हैं
न कोई चूहा
वह स्वयं डरता है कॉकरोच से
और कॉकरोच देखते ही
बन्दूक तान देता है
शह और मात के खेल का उस्ताद
तानाशाह वह
समुद्र की ओर देखकर पेशाब करता है
और डुबा देगा आधी दुनिया
समुद्र के पानी में
ऐसा सोचता है....। स

नामः भास्कर चौधुरी

जन्मः 27 अगस्त 2969 सरगुजा (छ.ग.) में।

शिक्षाः उज्जैन से इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा, एम.ए. (हिन्दी एवं अंग्रेजी), बी.एड.

सृजनः एक कविता संकलन 'कुछ हिस्सा तो उनका भी है' एवं यात्रा वृत्तांत 'बस्तर में तीन दिन'

प्रकाशित। कविताएँ, संस्मरण, समीक्षाएँ प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

सम्प्रतिः दिल्ली पब्लिक स्कूल, बालको (कोरबा) में अंग्रेजी व्याख्याता

सम्पर्कः बी/1/83, बालको टाउनशिप, बालको (छत्तीसगढ़) 495 684

मोबाइलः 9098400682

ई-मेलः bhaskar.pakhi009@gmail.com

कहानी

बिना छत का घर

मालती जोशी

सुबह सुबह किचन में खटर पटर सुनाई दी तो मैं कमरे से बाहर आई। देखा, सौम्या गैस के पास खड़ी है।

'सुबह-सुबह यहां क्या कर रही हो?'

'चाय बना रही हूँ।'

'अरे तो मुझे आवाज़ दे लेती न! मुझे लगा रात देर से सोये हो तुम लोग तो देर से ही उठोगे। इसलिये मैं भी लेटी रही।'

'इन्हें सुबह 6 बजे चाय पीनी होती है।'

'छुट्टी के दिन भी'

हाँ। मन हुआ तो चाय पीकर फिर सो जायेंगे। अच्छा ममा? तुम्हारी भी बना दी है। ब्रश करके ले लेना उसने कहा और ट्रे लेकर ऊपर चली गई।

मुझे बड़ा गुस्सा आ रहा था। मान लो, रोज की आदत भी है तो, क्या इसमें एक दिन बदलाव नहीं हो सकता। आधी रात को सोई लड़की को सुबह-सुबह जगा दिया।

पग फेरे के बाद पहली बार आई है सौम्या, वह भी कॉलेज की एल्यूमनी के लिये। दोनों साथ ही पढ़े हैं इसलिये समीर भी आया है। कल सुबह की फ्लाइट से दोनों आये थे। आते ही नहा धोकर निकल गये थे जो शाम ढले लौटे थे। फिर दोबारा जो गये तो आधी रात को लौटे थे। बेटी के पास पाँच मिनट इत्मीनान से माँ के पास बैठने का भी समय नहीं है। इसीलिये तो कहते हैं- शादी के बाद बेटी पराई हो जाती है।

नौ बजे बाद वह नहा धोकर जूठे कप-प्लेट लेकर नीचे उतरी। पार्वती करेले छील रही थी। सौम्या को देखते ही पहले तो उसने हाथ बढ़ाकर ट्रे ले लिया और फिर उसे गले लगाकर खूब प्यार किया।

कल की आई हो बिटिया और हमें आज दरसन मिल रहे हैं, उसने शिकायत की।

हमें भी सिर्फ दरसन मिले हैं कसम से जो पाँच मिनट बैठकर बात भी की हो। मैंने कहा।

हम दोनों की शिकायत को नज़र अन्दाज कर उसने कहा - 'मम्मी घर में और कोई सब्जी होगी?'

'एक दमआलू की भी बना रही हूँ। तुम्हें भरवाँ करेले पसंद है न इसलिये परसों से लाकर रख लिये थे। पर कल तुम लोगों का दोनों वक्त का खाना बाहर ही हुआ था न! इसलिये आज बना रही हूँ।

- ये न करेले बिलकुल नहीं खाते। और कोई सब्जी हो तो देखती हूँ। कहकर वह फ्रीज खंगालने लगी। फिर चार-पांच बरतन पार्वती को पकड़ाते हुए बोली- काकी- थोड़ा मसाला बचा लेना और इनमें भर देना। मसाले में मिर्च बड़ा तेज तो नहीं है न! ये जरा कम खाते हैं ना। पार्वती, बिटिया कितना बदल गई है देखा। कहाँ तो समीर समीर की रट लगाये रहती थी। और अब देखो- ये, वो, इन्हें, उन्हे...

अम्माजी कहती है बड़ों के सामने नाम नहीं लेना चाहिए। ठीक ही तो कहती है। और तुम भी बिटिया ठीक ही कर रही हो। हर समय जाप करना अच्छा थोड़े ही लगता है। आजकल तो बस यही रिवाज चल गया है। - वो पन्द्रह नम्बर वाली मेमसाब है न! साहब को बेटा कहती है। शुरू में तो मैं समझती थी कि बेटे को बुला रही है। अरे नाम ही लेना है तो ढंग से लो।

मुझे जिस बात से चिढ़हो रही थी पार्वती ने उसी की तारीफ कर दी। वाह। शादी को अभी सालभर हुआ नहीं है और लड़की कितना बदल गई है। अम्माजी की बात अब उसके लिये वेदवाक्य हो गई है। मुझे बेवजह गुस्सा आने लगा।

*****

दोपहर भोजन के समय मैंने कहा - समीर? शाम को क्या खाना पसंद करोगे ? वहीं बनवाऊंगी।

मम्मीजी। शाम को तो हम लोग बुआजी के यहाँ जा रहे हैं।

कौन बुआ ?

पापा की दूर के रिश्ते की बहन है। मैं यहाँ होटल में था तो छुट्टी के दिन अक्सर उनके यहाँ चला जाता था। इस बार मिलने जाने वाला था तो उनका आदेश हुआ कि खाना यहीं खाओगे। उस आदेश को टाला नहीं जा सकता न! नहीं तो कहेगी शादी के बाद लड़का बदल गया है।

तुम लोग क्या सिर्फ नाम करने मेरे यहाँ आये हो? मेरे हिस्से तो आते ही नहीं हो है।

कल का पूरा दिन आपकी नजर है। हम लोग कहीं घूमने जायेंगे, फिर बाहर ही खाकर लौटेंगे।

बाहर क्यों ?

लौटकर आप कब खाना बनायेंगी। एक दिन तफरीह ही सही। और हाँ- कल की पूरी शाम, आपकी बेटी आपके नाम। मतलब ?

कल शाम हमारी बेचलर पार्टी है। हमारी बेच के आधे लोग अभी कुंआरे है। इसीलिये कल की पार्टी केवल मर्दो की होगी। शह ध्दत्व कोई अपनी बीवी को नहीं लाइयेगा। इसलिये कल पूरी शाम आप अपनी बिटिया के साथ बिताइयेगा। जी भर कर बातें कीजियेगा। क्योंकि उसके बाद समय ही नहीं है। परसों सुबह तो हमें निकल ही जाना है।

मैं बहुत खुश हो गई।

सौम्या जब शाम को तैयार होकर नीचे उतरी तो मैं देखते रह गई। तुम डिनर पर जा रही हो या किसी शादी में जा रही हो?

- शादी के बाद पहली बार जा रही हूँ न। इनका कहना था- प्रापली डेस अप हो कर जाना चाहिये।

'इसलिये ये साड़ी लेती आई थी?

हाँ। वैसे भी दुपट्टे से सिर ढकने में प्रॉब्लम होती है। बार-बार गिर जाता है। साड़ी ठीक रहती है।

वहाँ सिर ढकेगी

हाँ ममा। वो मेरी बुआ सास है? उनका मान रखना जरूरी है।

तो अम्माजी के यहाँ तो घूँघट ही करना पड़ता होगा।

उसी समय समीर नीचे आये और मेरा प्रश्न अनुत्तरित रह गया।

दूसरे दिन हमने खूब मटरगश्ती की। डेम पर घूमने गये। वहाँ एक टपरी में चाय पी, पकोड़े खाये। फिर शहर से बाहर बने मॉल में गये खूब खरीददारी की। वैसे तो मैंने विदा की सारी तैयारी कर रखी थी। पर फिर

माल में उन दोनों की पसंद से भी कुछ ले लिया बाद में फुड कोर्ट में खाना खाया, घर लौटते में तीन बज गये।

घर लौटने के बाद अहसास हुआ कि हम मन से चाहे जितने युवा बने रहें पर शरीर अपनी बात कहता है। मैं बेहद थक गई थी। जाकर जो लेटी तो उठने का मन ही नहीं हुआ। छः बजे सौम्या ने चाय के लिये मुझे जगाया तब भी आँखे बन्द हुई जा रही थीं। पर अब सोना संभव नहीं था। पार्वती सिर पर खड़ी थी। उससे शाम का खाना भी बनवाया था और सौम्या को साथ देने के लिये लड्डू मठरी भी।

शाम सात बजे समीर पार्टी के लिये निकल गया। साढ़े आठ बजे मैंने और सौम्या ने खाना खा लिया। सौम्या बोली - ममा! मैं यहीं नीचे तुम्हारे पास लेटती हूँ ताकि इनके लिये दरवाजा खोलने के लिये तुम्हें न उठना पड़े। पिछली दो रातों से हम लोग तुम्हारी नींद खराब कर रहे हैं।

उसके लिये इतना क्यों सोच रही हो। अकेली होती हूँ तो सोती ही रहती हूँ।

आपको कोई सीरियल वगैरह देखना हो तो देख लो। मेरा तो आजकल सब छूट गया है।

जब घर में कोई नहीं होता तब टी.वी. साथ देता है। इसीलिये उसकी अहमियत है। अब तुम सामने बैठी हो तो मैं उस नकली दुनिया को क्यों देखूँगी।

थोड़ी देर हम दोनों के बीच मौन पसरा रहा। फिर मैंने पूछा समीर लोगों की पार्टी में तो पीना पिलाना भी होता होगा न?

शायद

समीर पीता है?

उसने जैसे मेरा सवाल सुना ही नहीं। बोली- ममा। हमारी दीदी रानी के क्या हाल है? अरसे से कोई खबर नहीं है।

मैं फोन करती हूँ तो डॉट देती है कि वहाँ से फोन मत किया करो, महँगा पड़ता है। और खुद करती नहीं है। मैं तो कबसे उनकी शादी की खबर का इन्तजार कर रही हूँ। पर हर छह महीने बाद पता चलता है कि वह एपीसोड समाप्त हो गया। अब नया शुरू हो रहा है।

प्रिया जैसे बदला ले रही है। यहाँ जितने लोगों ने उसे नकार दिया था- शायद उतने ही लोगों को वह नकारने वाली है।

पर यहाँ जो नकार मिले वे दीदी के लिये नहीं थे मामा। उन्हें तो कोई देखने के लिये भी नहीं आया था।

मालूम है - वे नकार मेरे लिये थे। इस देश की यही तो ट्रेजडी है। कोई विधवा अगर अपने बलबूते पर बच्चों को पालती है तो उस पर प्रशंसा की बौछार होती है। सबसे मन संवेदना से भीग जाते है। पर अगर कोई तलाकशुदा महिला अपने दम-खम पर बच्चों को बड़ा करती है तो उसे तिरस्कार मिलता है। उसके बच्चों को भी हिकार से देखा जाता है।

ममा। तुम्हारी बात से एक प्रसंग याद आ गया।

कौन सा?

याद है, आपने दीदी के लिये वर खोजने का काम मौसाजी को सौंप रखा था।

और किसे सौंपती। तुम्हारे मामा लोगों ने तो हाथ ऊँचे कर दिये थे।

मैं शायद हायर सेकेण्डरी में थी तब। एक दिन मौसा जी तन तनाते घर में घुसे थे। आते ही दहाड़े- मुझसे पहले तुम्हारी कीर्ति हर जगह पहुँच जाती है। कोई लड़की देखने तक को तैयार नहीं होता। बेकार में जलील होता रहता हूँ।

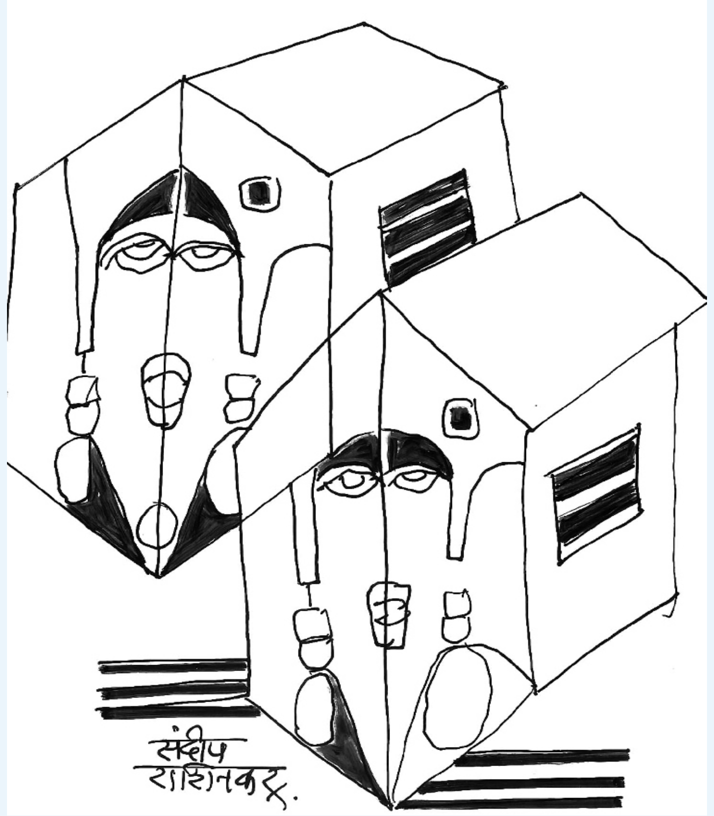

दीदी, अपने कमरे में थी। एकदम सामने आकर खड़ी हो गई। बोली- मौसाजी, आपको मेरी कसम है जो आज के बाद आप मेरे लिये किसी के दरवाजे गये। मैंने शादी न करने का फैसला कर लिया है- इस देश में तो नहीं ही करूंगा दो तीन महीने में मेरा एडमिशन हुआ जाता है। मास्टर्स के लिये मैं यू.एस.ए. जा रही हूँ। अगर कोई ढंग का आदमी मिला तो वहीं शादी कर लूँगी। कमसे कम वहाँ वालों को मेरी माँ के तलाकशुदा होने पर कोई एतराज न होगा।

उस दिन के बाद जीजाजी ने मुझसे बात करना ही छोड़ दिया बोले- जैसी खुद हो वैसे ही संस्कार बेटी को भी दिये हैं।

हाँ, मामा। मुझे वह प्रसंग ज्यों का त्यों याद है जैसा कल ही घटा हो। सच बताऊं ममा, उस दिन से मेरे मन में जैसे डर बैठ गया था कि कल को मेरी शादी की उम्र होगी तो फिर से इन्हीं सब बातों से गुजरना पड़ेगा। इसलिये समीर ने जब मुझे प्रपोज किया तो मैंने एकदम हाँ कर दी। मुझे उसके घर-परिवार के बारे में, उसकी आर्थिक स्थिति के विषय में, भाई बहनों के बारे में कुछ भी पता नहीं था। मन में बस एक ही बात थी - इस व्यक्ति ने मुझे शादी के योग्य समझा है तो यह मौका छोड़ना नहीं चाहिये। पता नहीं फिर ऐसा संयोग बने न बने।

मैं तो प्रिया की तरह तुम्हें भी बाहर भेजना चाहती थी। पर तुम शादी के लिये इतनी उतावली लगी यह तो अच्छा हुआ कि समीर अपनी ही जाति का था, नहीं तो उसके माता-पिता राज़ी थोड़े ही होते। समीर ने सब सोच समझकर ही प्रस्ताव किया होगा। आश्चर्य है, मेरा तलाक आड़े नहीं दिया।

बाबूजी थोड़े नाराज थे पर अम्माजी ने उन्हें मना लिया वे इकलौते बेटे की खुशियाँ छीनना नहीं चाहती थी। दोनों बहनों ने भी इनकी खूब वकालत की। अम्माजी ने मुझसे इतना जरूर कहा कि पास पड़ौस वाले कभी पूछे तो बता देना कि पिता नहीं है। पर पास पड़ौस में इतना मिलने जुलने की नौबत ही नहीं आई। - तुम्हें बुरा तो नहीं लगा न।

क्या ?

अम्माजी का इस तरह से कहना।

नहीं, उसमें बुरा क्या लगना है। तुम्हारे लिये जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं है उसका होना क्या और न होना क्या?

एक बात कहूँ ममा- बुरा तो नहीं मानोगी।

बोलो ?

तुमने हमें वह सबकुछ दिया है जो माता पिता अपने बच्चों को देते हैं। लेकिन फिर भी मेरे मन का एक कोना खाली ही बना रहा। अपनी सहेलियों के बीच में हमेशा हीन बोध से ग्रस्त हो जाती थी। वे लोग बात बात में पापा का नाम ले आतीं- यार पापा से पूछना पड़ेगा, आज तो पापा की अच्छी डॉट पड़ने वाली है, इन सर की शिकायत तो मैं पापा से जरूर करूँगी-। उसी समय मुझे अपना वजूद बड़ा दीन हीन सा लगता। कॉलेज में एक सहेली थी शालिनी - उसके पिता नहीं थे पर उनकी बड़ी सी फोटो ड्राइंग रूम में लगी हुई थी। वह कहती - हमें कभी लगता ही नहीं कि पापा हमारे बीच नहीं है। मुझे तो जब भी कोई प्राब्लम होती है, मैं पापा के फोटो के सामने जाकर खड़ी हो जाती हूँ। वे मेरी प्रॉब्लम हल कर देते हैं। यह सब सुनकर बड़ा आश्चर्य होता था, ईर्ष्या होती थी।

- तब अपनी माँ पर क्रोध भी आता होगा।

- नहीं ममा, मैंने तुम्हें कभी कटघरे में खड़ा नहीं किया। मैं जानती हूँ कोई औरत खुशी से अपना घर नहीं छोड़ती। वह आखरी क्षण तक अपना घर बचाने की कोशिश करती है।

थैंक्यू बेटा मुझे क्लीन चिट देने के लिये और थैंक्स फॉर -शेअरिंग विथ मा युवर फीलिंग्स।

अभी तुमने कहा था न कि मैं शादी के लिये उतावली हो रही थी। यह सच है ममा। मैं शादी के लिये नहीं, एक मुकम्मिल घर के लिये उतावली हो रही थी। अपनी सहेलियों की बातें सुनकर, अपना आसपास देखकर मेरे मन में अक्सर एक कल्पना उभरती थी। मुझे लगता माँ एक घर के समान जो अपने आँचल में सबको समेट लेती है। और मुझे पिता इस घर की छत की तरह लगते जो आंधी, पानी, गर्मी, बरसात से घर की रक्षा करता है।

'वाह! फन्टास्टिक' मैं कुछ कहने वाली थी कि दरवाजे की बेल बजी। बातों में हमे समय का पता ही नहीं लगा था।

*****

वे दोनों सोते चले गये पर मुझे देर तक नींद नहीं आई। बार-बार लगता रहा कि मैंने अपनी बेटियों के साथ अन्याय तो नहीं किया?

सौम्या कह रही थी कि कोई औरत खुशी से अपना घर नहीं छोड़ती। मैंने दो बार घर छोड़ा क्योंकि स्थितियां असहनीय हो गई थी। पहली बार पाँच साल की प्रिया को लेकर माँ के घर पहुंच गई थी शुरू में तो सब ठीक रहा पर चार-पाँच महीने बाद ही सबके चेहरे पर ऊब, खीज और बेजारी झलकने लगी। भाभी के व्यवहार में एकदम रूखापन आ गया। माँ बाबा दिनरात चिन्ता में डूबे रहते। और फिर एक दिन बाबा हृदयघात से चल बसे। तब मुझे घर आये डेढ़साल हो चला था। बाबा की मृत्यु से मुझ पर जैसे कहर टूट पड़ा। माँ विलाप करती जाती और कहती जाती - इसकी चिन्ता उन्हें खा गई नहीं तो वो मरने वालों में नहीं थे।

बाकी लोगों का विरोध भी अब सतह पर आ गया। मेरी बड़ी बहन एक बार आई थी वो बोली- अपमान ही सहना है तो अपने घर में सहो। इनके दरवाजे क्यों पड़ी हो?

रमा दीदी और जीजाजी ने मध्यस्थता करके हमारी सुलह करा दी। डेढ़दो वर्ष जैसे तैसे बीते और सौम्या का जन्म हुआ। दूसरी बेटी को जन्म देना मेरा घोर अपराध था। उसे क्षमा नहीं किया गया। हारकर मैंने दीदी से गुहार की - तुम्हीं मुझे इस नरक में पटक गई थी।तुम्हीं मुझे यहाँ से उबार सकती हो। मां के पास जाने का हौसला नहीं है। तुमने मदद नहीं की तो मैं दोनों लड़कियों को लेकर तालाब में छलाँग लगा दूँगी।

दोनों पति पत्नी भागे-भागे आये। हम तीनों को अपने साथ ले गये। वहाँ रहकर मैंने अपना बी.एड. किया। तलाक की प्रक्रिया पूर्ण की। छोटी सी ही सही नौकरी लगते ही मैंने अपना घर लिया। माँ को मनाकर अपने पास ले आई कि बच्चों को देखेगी। माँ ने जरा भी नानुकुर नहीं की क्योंकि घर का वातावरण बहुत विषाक्त हो गया था। वे अन्त तक मेरे पास बनी रही।

नौकरी और पढ़ाई साथ-साथ कर मैंने एक मुकाम हासिल कर लिया है। दोनों बेटियों को भी लायक बना दिया है। वह सब कुछ उन्हें दिया जो मध्यमवर्गीय माँ बाप अपने बच्चों को देते हैं। पर जैसा कि सौम्या ने कहा उसके मन का एक कोना खाली ही रह गया।

सुबह जब दोनों तैयार होकर नीचे उतरे तो मैं सौम्या को देखती रह गई। बेटी ब्लू स्कर्ट और सफेद फिलवाले टॉप में वह एकदम गुड़िया सी लग रही थी।

हाय कितनी प्यारी ड्रेस है?

अच्छी है न! ये पिछले महीने जर्मनी गये थे न! वहाँ से लाये थे। पता है मैं बहुत डर रही थी कि तुम पता नहीं क्या कहोगी?

इतनी दकियानूस हूँ मैं? अच्छा यह बताओ तुम्हारा दोनों को टीका करूं कि नहीं। इस ड्रेस के साथ तो बेमेल लगेगा।

ड्रेस के लिये हम अपने संस्कार थोड़े छोड़ देंगे। और तुम सुबह-सुबह तैयार क्यों हो गई हो। ममा तुम एयरपोर्ट नहीं आओगी। लौटते समय तुम्हें बहुत उदास लगेगा।

जाते समय दोनों ने प्रणाम किया। समीर के सिर पर हाथ रखकर मैंने आयुष्यमान होने का आशीर्वाद दिया।

और सौम्या को गले से लगाकर मन ही मन कहा - तुम्हारे घर की छत सदा सलामत रहे। स

120 मदनलाल ब्लॉक एशियाड विलेज,
होज खास नई दिल्ली-110049 मो.9993068007

किशोर काबरा के तीन गीत

करौंदे-सा गरम मौसम

गरम मौसम! गरम मौसम!

पाँव जलते हैं धरा के
और नभ के पंख।
समय के तट पर पड़े हैं
सीप-घोंघे-शंख।
ऋतु के पाँव में उभरा फफोले-सा गरम मौसम,
ज़हर के गाँव में ठहरा सँपोले-सा गरम मौसम।

लू पहन आई दुपहरी,
उमस ओढ़े साँझ।
रात उतरी साथ में ले-
ढोल-झालर-झाँझ।
मन की रेत पर सोया घरौंदे-सा गरम मौसम,
किसी ने बाग में बोया करौंदे-सा गरम मौसम।

चू रहा टपटप पसीना,
चिपचिपाते अंग।
रंग पोखर के उड़े।
बादल हुए बदरंग।
क्षण की शाख पर अटका हिंडोले-सा गरम मौसम।
किसी की आँख से छिटका बिनौले-सा गरम मौसम।

झर गई सरसों सुहानी,
कट गया है धान।
एक सन्नाटा पहनकर,
रुक गया खलिहान।
तन में तीर बन जलता सुरालय-सा गरम मौसम,
नयन में नीर बन गलता हिमालय-सा गरम मौसम।

सो गए ये गाँव

सो गए ये गाँव कुहरा ओढ़कर
सब सो गए।
राह भूले आरती के स्वर
रूपहरे हो गए।

दूर मंदिर के शिखर पर मोर बोला-
मैं यहाँ हूँ।
नीम पर काला-कलूटा शोर बोला-
मैं कहाँ हूँ?

कुछ धुएँ के बीज नभ के बीच
उजले हो गए।

बादलों के चूर्ण से सूरत ढँकी
जुड़वाँ फलों की।
भींगती जातीं मसें उठते हुए
दूर्वा दलों की।
पलक से पानी गिरा, सब फलक
धुँधले हो गए।

आँख की छत

याद आई तुम्हारी प्रथम मेघ-सी,
आँख की छत टपकती रही रात-भर।

इस रूमाली गगन के खुले छोर पर
इन्द्रधनुषी कसीदा तुम्हीं ने किया।
बिजलियों के नए तार लेकर उधर,
बादलों का कलेजा तुम्हीं ने सिया।

नींद के द्वार पर स्वप्न आए मगर,
क्रूर पलकें झपकती रहीं रात-भर।

जेठ के घर बसी लू कुंवारी रही,
किन्तु पछुवा की बेटी सुहागन बनी।
कोकिला छिप गई आम की ओट में,
कूक उसकी मगर स्याह नागन बनी।

दूध-घी से बनी चाँद की कोर पर,
एक बदली लपकती रही रात-भर।

आज कजरी के सीने से चुनरी उड़ी,
स्वप्न जुड़वाँ वहीं झाँकते रह गए।
आज आल्हा के पिछवाड़े खिड़की खुली,
सेज के पहरूए ताकते रह गए।

वक्त ने लौरियाँ भी सुनाई, मगर-
उम्र बैठी सिसकती रही रात-भर। स

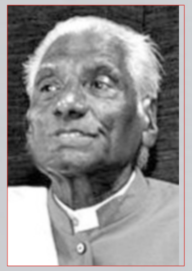

2, नवजीवन प्रेस कॉलोनी गुजरात विद्यापीठ के पीछे
अहमदाबाद-380004
मो.93520-25511

शोभा जैन

स्त्री आग और मिट्टी

किसी ने कहा था-
वो अपनी तपन से भरती है
आँचल में छिपे,
दुग्ध की गंध में लिपटे
बालक का पेट

किसी ने कहा -
उसकी देह से बहती
'शीतलता'
आदमी की
क्षुधा शांत करती

शायद इसलिए...
स्त्री 'आग' और 'मिट्टी'
राख में दबी-दबी सी वो
सुलगती है भीतर ही भीतर

चिंगारियों में दहकते
उसके दुःख, दर्द
और वो सब
जो कभी दिखाई नहीं देता
केवल सुलगता है
उपर की ठंडी राख में
भीतर ही भीतर
दबा किसी ज्वालामुखी-सा
पूरा जीवन जीती है
आग होकर भी मिट्टी सी वो!

मैं

मैं कोई लघु कविता नहीं,
जिसे दिन रात दोहराया जाय
न ही तुम्हारे जीवन का व्यंग्य
जिसे सुनकर मुदित होते तुम,
ओरो को मुदित करते
न ही तुम्हारे जीवन का छंद
मैं वो प्रसंग भी नहीं,
जो चर्चा का विषय बन जाय
न किसी के जीवन का रंगमंच
जिसे देखने भीड़ जमा हो जाय
मैं महाकाव्य हूँ।
जिसे पढ़पाना, पढ़कर समझ पाना
किसी के महाकवि होने का प्रमाण है।

बंटवारा

आदमी ने धरती रख ली
विज्ञान ने आकाश
हवाएँ फ्लेट की चहार दीवारी में कैद
सूरज बल्ब की रौशनी में
नदियाँ चढ़गई
स्वच्छता अभियान की बलि
नहीं अछूती,
प्रशासन के बंटवारे से
सबकुछ तो बंट गया
ईश्वर तक
मनुष्य के बंटवारे से ग्रस्त
अब देखना शेष है
कितने और टुकड़े शेष हैं
कौन-कौन कब तक भोगेगा
विभाजन की पीड़ा

हिन्दी

ये जो हिन्दी का 'आयतन' है
इसने भूगोल बदल डाले

जिस राह से गुजरी हिंदी
फिजी हो या अफ्रीका
सबके मन के नक्शों पर अंकित
कहीं ऑफिशियल तो कहीं
आर्टिफिशियल, पर है हिन्दी
अंग्रेजी के साथ ही सही,
निभा रही है जड़ों की तरह
भीतर ही भीतर फैलने की
भारतीय परम्परा

हिन्दी का मनोविज्ञान
बस इतना ही कि-
मुख से निकलती
हृदय में बस जाती
नदियों की तरह

अपने भीतर सबको समेटे
विदेशी पत्थरों से टकराती
विस्तार करती सागर-सा
बहती धारा प्रवाह,
महज़ भाषा नहीं हिन्दी
कुछ तो है इसमें
अपनेपन-सा स

शुभाशीष, 201-ए/369
सर्वसंपन्न नगर, इन्दौर-452016
मो.94245-09155

पुस्तकें मिलीं

ग़ाफिल (उपन्यास)
सुनील चतुर्वेदी
अंतिका प्रकाशन प्रा.लि.गाजियाबाद
मूल्य रू.140/-

है कुछ और भी (कविताएं)
सुधा आचार्य
सुधा प्रकाशन, उदयपुर 313001
मूल्य रू.100/-

शब्द स्वर (कविता संग्रह)
राधेश्याम सरावगी 'मसूदिया'
समर प्रकाशन, जयपुर
मूल्य रू.225/-

बिखरे मोती (आलेख)
मुरलीधर कनेरिया
हिन्दी विश्वभारती दिल्ली - 110094

देखा-समझा देस-बिदेस (विविध)
प्रताप सहगल
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नईदिल्ली
मूल्य रू.165/-

जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज था (उपन्यास)
पंकज सुबीर
शिवना प्रकाशन सीहोर म.प्र.
मूल्य रू.200/-

समकालीन हिन्दी लघुकथा
और आज का यथार्थ (आलोचना)
माधव नागदा
सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर
मूल्य रू.500/-

द ट्रुथ बिहाइंड आन एयर (इले.मीडिया)
पुष्पेन्द्र वैद्य
कलमकार मंच जयपुर -302018
मूल्य रू.150/-

सिंध प्रदेश एवं सिन्ध के महान कवियों की त्रिमूर्ति
रश्मि रमानी,
रंग प्रकाशन, इन्दौर
मूल्य रू.400/-

अपने समय से गुजरते हुए (कविता)
दुर्गाप्रसाद झाला
उमा ग्राफिक्स, शाजापुर
मूल्य रू.150/-

प्रदीप चौबे की ग़ज़लें

(1)

अपने गुस्से पे फ़िदा रहता हूँ
मैं ज़माने से ख़फ़ा रहता हूँ

मुझसे मिलना है तो तन्हाई में मिल
मैं अकेले में ख़ुदा रहता हूँ

मुझे पढ़ना है तो आईने में पढ़
तेरे चेहरे पे लिखा रहता हूँ

आप ही मुझसे नहीं हैं नाराज़
मैं भी अपने से ख़फ़ा रहता हूँ

आईना टूट गया, ठीक हुआ
अपने चेहरे से बचा रहता हूँ

स्व. प्रदीप चौबे
व्यंग्य और हास्य के जाने माने कवि प्रदीप चौबे का गत दिनों निधन हो गया है वे एक श्रेष्ठ ग़ज़लकार भी थे। आईसेक्ट ग्रुप ऑफ यूनिवर्सिटी के कुलाधिपति वरिष्ठ शिक्षाविद साहित्यकार श्री संतोष चौबे (भोपाल) के सौजन्य से यहाँ प्रस्तुत है स्व.प्रदीप चौबे की आठ ग़ज़लें
- संपादक

(2)

ढूँढता हूँ मगर नहीं मिलता
मुझको मेरा ख़ुदा कहीं मिलता

अब अगर है यही हमारा ख़ुदा
तो यही ठीक था, नहीं मिलता

हम अगर आसमान में गिरते
तो यही आसमां, ज़मीं मिलता

तू अगर मुंतज़िर हमारा था
तुझको छोड़ा जहाँ, वहीं मिलता

मैं ही ख़ुद ढूंढने से बचता रहा
वरना मिलता वो, बिलायक़ीं मिलता

(2)

इक कहानी और क्या
ज़िन्दगानी और क्या

चाहता है पेड़ बस
धूप, पानी और क्या

प्रेम का मतलब तो प्रेम
इसके मानी और क्या

रंग, मस्ती, वाब, फूल
नौजवानी और क्या

शोरगुल, गर्दो-गुबार
राजधानी और क्या

शाप भी, वरदान भी,
ज़िन्दगानी और क्या!

(6)

हम कितने नादान रहे
अपने से अनजान रहे

मेरी कोशिश इतनी है
मुझमें इक इन्सान रहे

अपने मसीहा से कहना
कुछ मेरी भी ध्यान रहे

रामायण, गीता के संग
ग़ज़लों का दीवान रहे

एक ज़माना था प्यारे!
सुख मेरे दरबान रहे

फिर वो ज़माने भी आए
दुःख बरसों मेहमान रहे

(3)

समुंदर की कहानी जानता हूँ
बहुत प्यासा है पानी, जानता हूँ

हमारे शहर में बादल हैं लेकिन
कहाँ बरसेगा पानी, जानता हूँ

मुहब्बत, प्यार, ख़ुश्बू, दोस्ती, दिल
मैं सब ल.जों. के मानी जानता हूँ

वो चुप रहकर भी क्या-क्या कुछ कहेगा
मैं उसकी बेज़ुबानी जानता हूँ

तेरे क़िस्सों में आख़िर क्या मिलेगा
वही राजा या रानी, जानता हूँ

बहुत चीख़ेगा, फिर रोने लगेगा
तेरी आदत पुरानी जानता हूँ

मुझे नीलाम कर देगी किसी दिन
तुझे ऐ ज़िन्दगानी! जानता हूँ

(4)

कैसी सौंधी ख़ुशबू है
लगता है मिट्टी, तू है

बचपन लौट के आया है
जानी-पहचानी बू है

अगर नहीं तो कहीं नहीं
वरना है तो हर सू है

सबको साधे रखता है
दिल बेचारा साधू है

क्या है साहब ये दुनिया
ज़िन्दा लाशों की क्यू है!

सब कुछ चलता रहता है
जाने कैसा जादू है

शब भर जागा करता है
इश्क़ भी गोया उल्लू है

फूलों वाले! जानता हूँ
तेरे ज़हन में चाकू है

गूँज रही है तन्हाई
क्या मेरे घर में तू है

(7)

रंगो-बू, आबो-ताव, क्या-क्या थे
कल चमन में गुलाब क्या-क्या थे

नींद टूटी तो घूप अँधेरा था
ख्वाब में आफ़ताब क्या-क्या थे

दोस्त-एहबाब, नाते-रिश्तेदार
ज़िन्दगी भी अज़ाब क्या-क्या थे

इक तकल्लुफ़ था, रह गए ख़ामोश
वरना लब पर जवाब क्या क्या थे

हुस्न था, इश्क़ था, जाना था
ज़ीस्त में इन्क़लाब क्या-क्या थे

ख़ैर समझो भुला दिए हमने
वरना तुमसे हिसाब क्या-क्या थे

कहकशां, आसमान, सय्यारे
ख़ाकसारों के ख्वाब क्या-क्या थे

(8)

तुमको तो सुब्हो-शाम दिवाली है सेठ जी!
अपने लिए तो ज़िन्दगी, गाली है सेठ जी!

ये जो तु हारे जिस्म पे लाली है सेठ जी!
तुमने मेरे लहू से चुरा ली है सेठ जी!

तुमने चबा लिए तो चने शौक़ हो गए
हमने जो खा लिए तो जुगाली है सेठ जी!

आकर हमारे गाँव की सेहन तो देखिए
ये भी हमारे पेट-सा ख़ाली है सेठ जी!

भेजा है तुमने जिसको तक़ाजे के वास्ते
वो आदमी नहीं है, दुनाली है सेठ जी!

हरखू बुखार में है उसे मत जगाइये
उसने अभी-कभी तो दवा ली है सेठ जी!

कुछ ऊँच-नीच मुँह से निकल जाए तो छिमा
हमने ज़रा-सी आज लगा ली है सेठ जी! स

कथाराग-17

समावर्तन के अधबीच कहानी केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ

विशेष सम्पादक : **मुकेश वर्मा**
सहयोग : **श्रीराम दवे**

जन्म - 1 अगस्त 1912
निधन - 30 अप्रैल 1976

जगन्नाथ प्रसाद चौबे 'वनमाली'

चालीस से साठ के दशक के बीच 'वनमाली' हिन्दी के कथा जगत के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर थे। 1934 में उनकी पहली कहानी 'जिल्दसाज़' कलकत्ता से निकलने वाले 'विश्वमित्र' मासिक में छपी और उसके बाद लगभग पच्चीस वर्षों तक वे प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं 'सरस्वती', 'विश्वमित्र', 'विशाल भारत', 'लोकमित्र', 'भारती', 'माया', 'माधुरी' आदि में नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे। अनुभूति की तीव्रता, कहानी में नाटकीय प्रभाव, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक समझ और विश्लेषण की क्षमता के कारण उनकी कहानियों को व्यापक पाठक वर्ग और आलोचकों दोनों से ही सराहना प्राप्त हुई। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने अपने श्रेष्ठ संकलन में उनकी कहानी 'आदमी और कुत्ता' को स्थान दिया था। करीब बीस वर्षों तक मध्यप्रदेश के अनेक विद्यालयों, महाविद्यालयों में वनमाली जी की कहानियाँ पढ़ाई जाती रहीं। उन्होंने करीब सौ से ऊपर कहानियाँ, व्यंग्य लेख एवं निबंध लिखे। कथा साहित्य के अलावा उनके व्यंग्य निबंध भी खासे चर्चित रहे हैं। आकाशवाणी इन्दौर से उनकी कहानियाँ नियमित रूप से प्रसारित होती रहीं। कथा साहित्य के अतिरिक्त 'वनमाली' जी का शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा। वे मध्यप्रदेश के अग्रगण्य शिक्षाविदों में थे। शिक्षक, प्रधानाध्यापक एवं उपसंचालक के रूप में उन्होंने बिलासपुर, खंडवा और भोपाल में कार्य किया और इस बीच अपनी पुस्तकों के माध्यम से, शालाओं और शिक्षण विधियों में नवाचार के कारण और राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद की समिति के सदस्य के रूप में शिक्षा जगत में उन्होंने महत्त्वपूर्ण जगह बना ली थी। 1962 में डॉ.राधाकृष्णन के हाथों उन्हें राष्ट्रपति पुरस्कार से विभूषित किया गया।

वनमाली जी का जन्म 1 अगस्त 1912 को आगरा में हुआ और 30 अप्रैल 1976 को भोपाल में मस्तिष्क की नस फट जाने से उनका निधन हुआ। उनका पहला कथा संकलन 'जिल्दसाज' उनकी मृत्यु के बाद 1983 में तथा 'प्रतिनिधि कहानियाँ' के नाम से दूसरा संकलन 1995 में प्रकाशित हुआ था। 'वनमाली समग्र' में उनकी सभी प्रकाशित रचनाओं को समग्रता से प्रस्तुत किया गया है।

वनमाली जयंती पर विशेष

जिल्दसाज

कहानी

(1)

वह अधेड़ जिल्दसाज सबेरे से शाम तक और अंधेरा होने पर दिये की रोशनी में बड़ी रात तक, अपनी छोटी-सी दुकान में अकेला एक फुट लम्बी चटाई पर बैठा किताबों की जिल्दें बाँधा करता। उसकी मोटी व भद्दी अंगुलियाँ बड़ी उतावली से अनवरत रंग-बिरंगे कागजों के पन्नों में उलझती रहतीं और उसकी धुंधली आँखें नीचे को झुकी काम में व्यस्त रहतीं।

जिल्दसाज का स्वभाव रूखा था व स्वर तीखा। ग्राहकों को अपनी मजूरी के जो दाम वह एक बार बता देता, उनमें कमी-बेशी न करने की उसे एक जिद-सी थी। लेकिन ग्राहक उसकी इस जिद और रूखाई पर भी उसके यहाँ किताबें डाल जाते; क्योंकि जिल्दसाज वास्तव में किताबों की जिल्द बहुत सुन्दर बाँधता था। किताबों की जिल्द बाँधना ही उसके एकाकी विरक्त जीवन में सत्य था। और सत्य ही तो सुन्दर होता है।

एक दिन सबेरे जिल्दसाज नित्य की भाँति अपनी दुकान में बैठा काम कर रहा था कि इतने में एक स्त्री उसके सामने आ खड़ी हुई। उसके साथ उसका आठ साल का बालक भी था।

स्त्री ने पूछा- "क्यों जिल्दसाज, रहीम की किताब की जिल्द तुम्हीं ने बाँधी है?" जिल्दसाज ने नजर ऊपर की।

रहीम? रहीम कौन? वह किसी रहीम को नहीं जानता। न जानने की उसे जरूरत ही है। यह कैसी पागल स्त्री है। काम की बात क्यों नहीं करती? उसके पास तो काम है। काम को लेकर ही वह जीता है। काम ही उसे सही रास्ते पर ले जा रहा है। उसके पास ऐसी कहाँ फुरसत, जो वह किसी से अपना सरोकार जोड़े। जिल्दसाज बोला- "मुझे नहीं मालूम। तुम अपना काम बताओ।"

स्त्री जिल्दसाज के रूखे जवाब से झेंप गयी। उसने बताया- "भाई, रहीम की किताब की जिल्द देखकर मेरा लड़का भी अपनी फटी किताब की जिल्द बँधाने के लिये जिद पकड़े हुए है। यह रही किताब। बताओ, क्या लोगे?"

जिल्दसाज ने स्त्री के साथ से किताब लेकर उसे उल्टा-पल्टा। तब लापरवाही से उसने यह कह दिया- "छै आने पैसे होंगे।"

जिल्दसाज के लिये सौदा तय रहा, इससे वह काम में लग गया।

पर स्त्री के पास तो पैसों का सवाल था।

वह बोली- "भाई, छै आने तो बहुत होते हैं। मैं मेहनत-मजूरी करके पेट पालने वाली कहाँ से पाऊँगी? मुझसे तीन आने ले लेना। मैं तुम्हारा बड़ा गुन मानूंगी।"

जिल्दसाज भुनभुना उठा।

उसकी बात को दुलखने वाली यह स्त्री कौन होती है? उसकी बात आज तक किसी ने नहीं दुलखी। हमेशा उसे मुंह मांगे दाम मिले हैं। उसने जो चाहा है, वह ग्राहकों ने खुशी से दिया है। और क्यों न देंगे? वह क्या कोई काम में खोट करता है? तब इस स्त्री का उसकी हेठी करने का क्या मतलब? काम की बात में गुन-एहसान की क्या बात? उसका सम्बन्ध तो इस दुनिया से अब तक लेन देन का रहा है। वह तो केवल अपनी मजूरी और चोखे काम की चीन्हता है। उसे दया और एहसान की बात क्या मालूम?

जिल्दसाज ने बताया- "छै आने से मैं एक कौड़ी भी कम नहीं लूंगा।"

स्त्री ने आजिजी की- "भाई, खुदा तुम्हें बहुत देगा। तुम्हारी मेहरबानी से मेरे बच्चे का दिल रह जायगा।"

जिल्दसाज इस बार चिढ़गया।

खुदा? खुदा को वह क्या जानता है? कुल जमा उसने अपनी दुकान से ही जीने के लिए पूंजी पायी है। रोजगार, किताबें, कागज बस इन्हीं के बीच तो उसकी जिन्दगी के लम्बे-लम्बे बरस कटे हैं। उसने तो कभी नहीं महसूस किया कि इस जिन्दगी को चलाने के लिए खुदा की भी कहीं किसी तरह से जरूरत पड़ती है। तब खुदा क्या खाक मदद करेगा?

जिल्दसाज झल्लाकर बोला- "मैं खुदा-उदा की बात नहीं जानता। जब तेरे पास पैसे ही नहीं थे, तब तू यहाँ क्यों आयी? जा, सिर ना खा। काम करने दे।"

जिल्दसाज फिर किसी किताब के पन्ने ठीक जमाने लगा।

लेकिन इस तरह से डांटे जाने पर भी स्त्री वहाँ से नहीं टली और उसका बालक भी उसी तरह घबराहट से अपनी माँ का हाथ पकड़े खड़ा रहा। स्त्री कभी काम करते जिल्दसाज को देखती और कभी उसकी निगाह जिल्दसाज की जालों और गर्द से भरी दुकान की दीवारों से टकराती। एकाएक कोई बात उसे सूझ गयी।

स्त्री ने सहमते-सहमते पूछा- "अच्छा, भाई बाकी बचे तीन आने में मैं तुम्हारी दुकान झाड़-बुहार दूंगी और जाले व गर्द साफ कर दूंगी। तब तो तुम मेरे बच्चे की किताब की जिल्द बाँध दोगे?"

जिल्दसाज अब सचमुच असमंजस में पड़ गया। ऐसा गरीब ग्राहक उसकी जिन्दगी में अब तक नहीं गुजरा था। उसने काम छोड़ स्त्री पर निगाह डाली। अचानक उसकी दिल की बस्ती में नमी छा गई। उसने पहली बार स्त्री के दीन और निस्सहाय चेहरे को देखा। उसकी पैबन्दों से भरी ओढ़नी को परखा। लड़के का मासूम और बेबस चेहरा भी उससे छिपा नहीं रहा। जिल्दसाज के अन्तर में आज पहली बार रहम बरस पड़ा।

जिल्दसाज तब अपने को छिपाते हुए बोला- "अच्छा दो किताब। मैं मुफ्त बाँध दूंगा। कल आकर तुम ले जाना।"

जिल्दसाज फिर किताब ले, बिना उस स्त्री और बालक की ओर देखे, झट कागजों की कतरन में कोई चीज खोजते खो गया।

(2)

दूसरे दिन वह स्त्री अपने बालक के साथ किताब लेने आयी। जिल्दसाज ने किताब निकाल बालक को दे दी।

बालक किताब देख खुशी से नाच उठा।

बोला- "इतनी सुन्दर जिल्द तो माँ, रहीम की किताब की भी नहीं बँधी।"

माँ अपने बच्चे की खुशी में फूल उठी। वह जिल्दसाज से बोली- "भाई खुदा तुम्हारी रोजी में बरकत दे।"

किन्तु जिल्दसाज यह सब कुछ नहीं देख सुन रहा था। वह इस ध्यान में उलझा था कि इन दो परदेशियों से किसी अनजाने क्षण में उसकी जो पहचान जुड़ गयी है, वह क्या यहीं टूटकर खत्म हो जायेगी? वह अब अपने अकेलेपन से ऊब उठा था। उसके लिए अब जगत का कोई अर्थ हो आया था। उसका मन अब रोजी को ही सब कुछ मानने से इन्कार करने लगा। उसके अन्दर एक निराली प्यास उठ आयी थी। उसे मालूम पड़ रहा था कि वह प्यास किसी से अपना सरोकार जोड़कर ही शान्त की जा सकती है।

जब स्त्री बन्दगी करके चलने लगी, तब जिल्दसाज-जैसा रूखा आदमी भी विकल हो उठा। उसने रूकते-रूकते कहा- "तुम कहाँ रहती हो?"

स्त्री का जवाब हुआ- "इसी मुहल्ले में रहती हूँ। आपकी दुकान से पन्द्रह-बीस घर छोड़ करके।"

"तुम्हारे खाविन्द क्या करते हैं?"- जिल्दसाज ये पूछते हुए इधर-उधर झांक रहा था।

स्त्री ने बताया- "मेरे खाविन्द का इन्तकाल हुए तो चार बरस होने आये।"

"तो तुम गुजर कैसे करती हो?" जिल्दसाज का यह तीसरा प्रश्न था।

स्त्री बोली- "मैं बेलें बनाती हूं बूटे काढ़ती हूं और जरी का काम भी कर लेती हूं। मगर आजकल यह मजूरी भी मुश्किल हो गयी है।" जिल्दसाज न

जाने कुछ देर तक क्या सोचता रहा। तब उसने कहा- "तो सुनो। अगर तुम्हें उज्र न हो तो बगल वाला मेरा जो कमरा खाली है, उसमें तुम आकर रह सकती हो। मेरे लिए तुम रसोई बनाना। मैं ऊपर से तुम्हें चार रूपया महीना दूंगा।"

स्त्री एक बारगी इतनी ढेर-सी मेहरबानी न सह सकी। उसका सिर कृतज्ञता के भार से झुक गया। वह धीमे स्वर में बोली- "शुक्रिया करती हूं। आपने मुझ गरीब औरत को उबार लिया।"

आज जब स्त्री और उसका बालक खुश होते हुए घर चले गये, तब जिल्दसाज सूना-सा, खोया सा, लोगों की आती-जाती भीड़ को देखता अपनी उसी एक फुट चटाई पर सिकुड़ा अकेला बैठा था।

(3)

अगले दिन वह स्त्री अपने कपड़े लत्तों का एक टीन का बक्स, एक बिस्तर तथा दो-चार एलूमीनियम के बरतन ले जिल्दसाज के यहाँ चली आयी।

जिल्दसाज की जिन्दगी में एक नया जमाना आया। उसका बर्ताव अब अपने ग्राहकों से रूखा नहीं होता था। वह बड़ी मुलायमी से उनसे पेश आता। दामों के लिए भी वह अब पहले के समान जिद नहीं करता। उनमें कमी-बेशी करके भी वह लोगों की किताबें डाल लेता।

जिल्दसाज जब किताबों की जिल्द बाँधने बैठता, तब वह पहले-जैसा एकाग्र चित्त नहीं रहता। बीच-बीच में वह बच्चे का पाठ सुनता और कभी उसके माँग करने पर उसे रंगीन कागजों की नावें व दवातें बनाकर देता। जिस दिन खेल तमाशा होता, उस दिन वह बालक को अपने साथ लिवा ले जाकर तरह-तरह के खिलौने व मिठाइयाँ दिला लाता।

शाम को जब वह काम से ऊब जाता, तब दुकान बंद कर देता। मुंह-हाथ धोकर नमाज पढ़ता व झुटपुटे में दुकान के चबूतरे पर बैठा आते-जाते लोगों को देखा करता और न जाने क्या सोचा करता।

रात होने पर वह बड़ी चाह से घर के भीतर रोटी खाने जाता। उसके साथ उस स्त्री का बालक रज्जब भी खाने बैठता। खाते-खाते जिल्दसाज भोजन की आलोचना करता और स्त्री शर्माती-सी उसकी बातों का जवाब देती। उस समय जिल्दसाज के नीरस-विरक्त जीवन में रस ही रस छलका दीख पड़ता।

एक दिन जिल्दसाज ने खाते-खाते रज्जब की माँ से पूछा- "क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है? यह तो तुमने कभी नहीं बताया।"

स्त्री ने भेदभरी हंसी हंसकर कहा- "नाम जानकर क्या करियेगा?"

जिल्दसाज जैसे पकड़ा गया। वह बोला- "नाम का क्या किया जाता है? मैं उसी नाम से पुकारूंगा। और क्या?"

स्त्री ने तब चूल्हे की आग तेज करते हुए बताया- "गुलशन"।

"अच्छा, तो मैं तुम्हें अब 'गुल' कहकर पुकारूंगा।" जिल्दसाज ने बड़ी संजीदगी से कहा।

गुलशन के गोरे गाल लाल हो गये। सुन्दर बाँकी आँखों में चिन्ता छा गयी। उसने बड़ी धीमी महीन आवाज में कहा- "नहीं नहीं। इस नाम से मेरे खाविन्द मुझे पुकारा करते थे।"

जिल्दसाज के मुंह से निकला- "तो?"

स्त्री कभी ऐसे आमने-सामने नहीं हुई थी। बोली- "तो क्या?"

जिल्दसाज ने इस बार गुलशन की आँखों में आँखें डालकर कहा- "तो तुम चाहती हो कि मैं तुम्हें उस नाम से न पुकारूँ? यह नहीं होने का। मैं तुमसे निकाह करना चाहता हूँ, पागलपन नहीं। बोलो, मंजूर है?"

रज्जब की माँ के लिये यह एक समस्या हो गयी। अभी तक, आज तक उसने एक सेविका की भाँति जिल्दसाज को प्रसन्न रखने की कोशिश की थी। उसकी हँसी का अपनी हँसी से उत्तर दिया था।

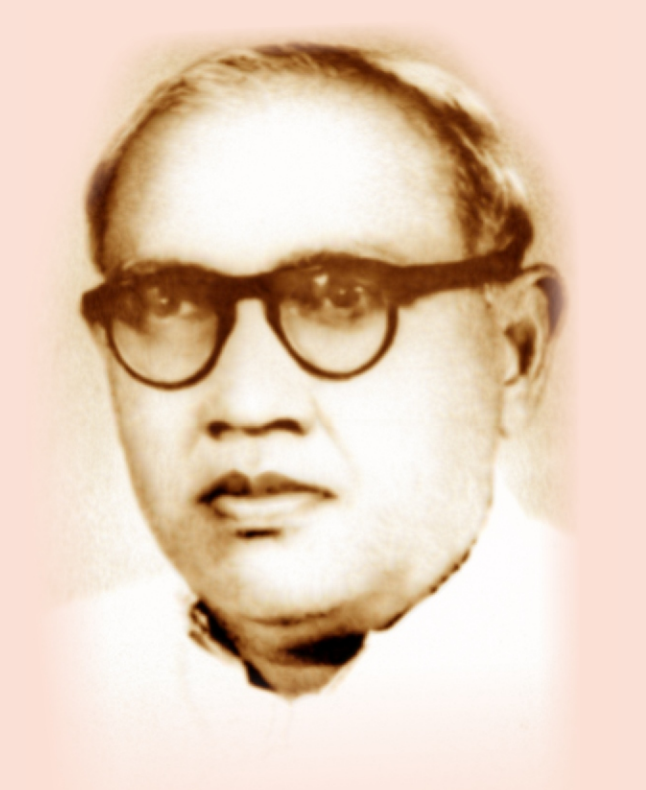

जिल्दसाज एकदम टूट गया। लेकिन बुझते दीपक के क्षणिक आलोक जैसे उत्तेजित स्वर में वह बोला- "अभी तक मैंने इस दुनिया से कुछ नहीं पाया। आज आखिरी मर्तबा तुम्हें प्यार किया है, सो तुम भी मुझे ठुकराकर चूर-चूर कर देना चाहती हो। बोलो, क्या मैं तुम्हारी थोड़ी सी दया का भी अधिकारी नहीं?"

गुलशन ने सफाई दी- "मुझे माफी दो। मुझे इन काँटों में न घसीटो। मुझ बेकस को यों ही पड़ी रहने दो।"

जिल्दसाज का जोश गुलशन के जवाब से एकाएक ठंडा पड़ गया। लेकिन तब भी उसके भीतर के स्वर को ठेलते हुए जैसे उसने पूछा- "तो क्या तुम मुझे बिल्कुल नहीं चाहतीं?"

"नहीं, सो बात नहीं। मैं तुम्हारी दिलोजान से सेवा करूंगी। तुम्हारी हँसी का जवाब हँसी से दूंगी। मगर तुमसे अर्ज है, तुम मुझसे मेरे खाविन्द की याद ना छीनो।" गुलशन की सुन्दर आँखों में करूणा बरस रही थी।

जिल्दसाज एकदम टूट गया। लेकिन बुझते दीपक के क्षणिक आलोक जैसे उत्तेजित स्वर में वह बोला- "अभी तक मैंने इस दुनिया से कुछ नहीं पाया। आज आखिरी मर्तबा तुम्हें प्यार किया है, सो तुम भी मुझे ठुकराकर चूर-चूर कर देना चाहती हो। बोलो, क्या मैं तुम्हारी थोड़ी सी दया का भी अधिकारी नहीं?"

गुलशन बस इतना ही कह सकी- "मुझे माफी दो"।

जिल्दसाज निरूत्तर हो गया।

मिलन के आरम्भ में जिल्दसाज कठोर था और मिलन के अन्त में रज्जब की माँ।

जिल्दसाज अब भी किताबों की जिल्द बाँधा करता था और अब भी उसके पास ग्राहक आते थे, किन्तु अब न तो वह उतनी सुन्दर जिल्दें बाँधता था और न उसके पास पहले-जैसे ग्राहक आते थे। स

विश्वमित्र, 1934

वनमाली की पुनर्जागरणमूलक कहानियाँ

डॉ. कमला प्रसाद

साहित्य के लिपिबद्ध इतिहास में बहुत से नाम अचीन्हें रह जाते हैं। उनके नजदीक आने पर लगता है कि पहचाने गए लेखकों की तुलना में उनका महत्व कम नहीं है। रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक गद्य के इतिहास में प्रेमचन्द के काल को तीसरा उत्थान काल कहा है। तीसरे उत्थान काल में उन्होंने जिन कहानीकारों को विशेष रूप से रेखांकित किया है- उनमें प्रेमचन्द, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, भगवती प्रसाद वाजपेयी, चन्डीप्रसाद 'हृदयेश', विश्वम्भर शर्मा 'कौशिक', जनार्दन प्रसाद झा द्विज, रामकृष्ण दास, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', जैनेन्द्र कुमार, जी.पी. श्रीवास्तव, वृन्दावन लाल वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। याद रहे कि निराला और प्रसाद के अलावा अन्य अनेक कवि भी उस समय कहानियाँ लिख रहे थे जो उस समय की प्रमुख सामाजिक-सांस्कृतिक माँग 'पुनर्जागरण' को जीवन की आन्तरिक वृत्तियों के संघर्ष के जरिए सम्पन्न कर रहे थे। इस दौर के कथाकार सामाजिक-सांस्कृतिक धार्मिक रूढ़िवाद पर गंभीर चोट करते थे। वे चरित्रों का संवेदनात्मक तरीके से मनुष्यता के धरातल पर विकास करते थे। आदर्श और यथार्थ के बीच के अन्तराल को मिटाने की कोशिश करते थे। गुलेरी की 'उसने कहा था' और भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'निंदिया लागी' जैसी कहानियों का बार-बार पाठ होता था। लेखक कई तरह से कहानियाँ लिखते। जैसे- परिस्थितियों का रोचक वर्णनात्मक विकास, घटनाओं का हृदयस्पर्शी वर्णन, घटना और संवाद का स्मरणीय चित्रण, और कथावस्तु के विकास के लिए विचारों की मार्मिक व्याख्या आदि। इन लक्षणों से कई तरह की कहानियाँ लिखी गईं। विविधता के रंग खूब खिले। सारा वृत्तान्त एक तरह से सुधारवादी था। नामवरजी इस दौर के लेखन को वास्तविक भारत के खोज की संज्ञा देते हैं। महात्मा गांधी के कर्म का एक रूप भारत की खोज का ही रहा है। निराला के शब्दों को उधार लें तो 'भ्रम के भीतर से भ्रम के पार जाना है, का दौर था।' महात्मा गांधी धर्म के लिबास में धार्मिक कट्टरवाद के पार ले जाना चाहते थे- भारतीय समाज को। इस दौर में जिस लेखक की कहानियाँ आचार्य शुक्ल की निगाह से नहीं गुजरीं, वे हैं- कथाकार वनमाली। वनमाली का सृजनकाल सन् 1934 से सन् 1965 तक फैला है। मैंने इस टिप्पणी में सन् 1934 से सन् 1940 तक की कहानियों को लिया है। वे प्रमुख कहानियाँ हैं- जिल्द साज, रेल का डिब्बा, पत्नी, सन्तरे वाली, काकी, स्वामी और सभ्य है।

वनमाली की कहानियाँ खोलने के लिए 'वनमाली समग्र' में वनमाली का रामनाथ 'सुमन' को लिखा एक दिलचस्प पत्र छपा है। इस पत्र से उस दौर की बहस और वनमाली के लेखन की मूल प्रकृति को समझा जा सकता है। पत्र की महत्वपूर्ण पंक्तियाँ हैं 'मैं खुद यह महसूस करता हूँ कि प्लॉट और चरित्र के नाम पर मेरी कहानियों में बहुत थोड़ी चीज है- वातावरण की शायद मैंने कहीं-कहीं कोशिश की है। किन्तु मेरी कोई बात प्रबल हो पड़ी है तो यह है आलोचना और विश्लेषण। शायद यह दोष मेरी दृष्टि का हो। मेरे लिए जीवन नाम की चीज बड़ी Zero है। वह शायद टुकड़ों में, प्रत्यालोचना में ही दिख जाता है, तो दिख जाता है। और फिर मैं कहानी में सब बातें छोड़ने को तैयार हूँ, पर उनमें Intensity और Dereameatic Element का होना मैं बहुत लाजिम समझता हूँ। शायद ये दो चीजें ही कहानी की Technic की जान हैं।'

वनमाली की कहानियों को पढ़ें तो जीवन-जगत की आलोचना-प्रत्यालोचना से ही वे चरित्रों की अलग-अलग प्रकृति और उनकी वर्गीय आचरण की पहचान कराते हैं। जीवन के वास्तविक सूत्रों से आलोचना-प्रत्यालोचना का धागा नहीं टूटता। नन्द दुलारे वाजपेयी ने अपनी प्रेमचंद विषयक पहली समीक्षा में यही दोष उन पर भी लगाया था। कहा था कि प्रेमचन्द सिद्धांत कथन करते हैं। फिर उसके उदाहरण में कहानी का वृत्त आता है। दरअसल कहानी हो या उपन्यास उस दौर में रूढ़िवाद की तार्किक पराजय के लिए विश्लेषण का तत्व आवश्यक था। इसके बिना पाठक की सहमति कैसे संभव होती। साहित्य की जागरणमूलकता कैसे चरितार्थ होती। गौर से देखें तो विश्लेषण के तत्व से न्यूनाधिक मात्रा में कोई लेखक अछूता नहीं रहा है। वनमाली के द्वारा 'रामनाथ सुमन' को लिखे पत्र में उनके परामर्श की सीमाएँ अधिक नजर आती हैं। वनमाली का तार्किक उत्तर उनकी कहानियों की विश्वसनीयता और सघनता से स्वतः सिद्ध आत्मविश्वास के साथ प्रकट होता है।

कहा जाता है कि साहित्य के इतिहास में मध्यकालीन काव्य के बाद आधुनिक हिन्दी साहित्य के पूर्वार्ध के साहित्य ने ही अपने जीवन-स्वप्न को व्यापक किया। विविधता का संघर्ष विश्वदृष्टि के आधार पर वैचारिक धरातल पर सम्पन्न हुआ। गौर करने की बात है कि दोनों युगों में विश्वदृष्टि के विस्तार के केन्द्र में मूल मनोभाव 'प्रेम' था। रिश्तों का मानवीय प्रेम, देश प्रेम, चराचर प्रेम और कुल मिलाकर विभेद की समाप्ति के आयाम। आजादी की लड़ाई में देश-प्रेम सत्ता की दृष्टि में अपराध की कोटि में था। मध्यकाल के नमूने के तौर पर खाप पंचायतें आज भी प्रेम की शत्रु हैं। प्रेम ऐसा तत्व है कि यदि वह निर्मल रूप से जीवन में प्रवेश कर गया तो उसके सीमा विस्तार में देरी नहीं लगती। सच्चे प्रेमी-प्रेमिका का भावबोध मानव मात्र के प्रेम में स्वतः रूपान्तरित हो जाता है। ऐसे प्रेम को परिभाषित करें तो- समानता के धरातल पर दो व्यक्तियों का भाव-सम्बन्ध ही प्रेम की संज्ञा से अनुष्यूत होता है। आधुनिक युग में छायावादी साहित्य की प्रधान वृत्ति प्रेम ही है। वही व्यक्ति प्रेम और मानवीय प्रेम की दीवार को तोड़ने की कोशिश करता है। जाति, धर्म, कुल, गोत्र, धन-दौलत की दीवालें सदियों से प्रेम की उन्मुक्तता को रोकती रही हैं। साहित्य में जिस प्रेम पाक को रस दशा कहा गया है वह सामाजिक जीवन में दुर्लभ रहा है।

वनमाली की आलोच्य कहानियों का मूल स्वर प्रेम है। उसे लेखक ने प्रवाहमान जीवन मूल्य की तरह अर्जित करने का प्रयास किया है। मसलन "जिल्द साद", 'पत्नी', 'स्वामी' और 'काकी' अलग-अलग तरह से 'प्रेम पात्र' की रचना के लक्ष्य से बुनी हैं। 'जिल्द साज' किताबों की जिल्दें बनाने में बेजोड़ है। ग्राहकों से मोलभाव नहीं करता। केवल पारिश्रमिक बताता है- बस। उसका आन्तरिक जीवन एकाकी और नीरस है। अधूरेपन के चिह्न व्यक्तित्व में है। एक दिन गुलशन नामक महिला अपने बेटे की पुस्तक में जिल्द बनाने का अनुरोध लेकर आई। उसके पास पैसे कम थे- इसलिए महिला ने 'खुदा देगा' जैसे आशीर्वाद से जिल्द साज को पिघलाना चाहा। जिल्द साज ने कहा कि उसके लिए खुदा की कोई भूमिका नहीं है। उसे जो

> कहानी 'जिल्द साज' में प्रेम-प्यास के आश्रय आलम्बन का संसार अलग है उसमें अधूरे आदमियों को करीब लाकर पूरेपन की पहचान के संकेत दिए गए हैं। 'गुलशन' अपने मृत पति के प्यार को नहीं भूलना चाहती अन्यथा 'जिल्द साज' और 'गुलशन' का अलग प्रेम राज्य बनता। 'पत्नी' और 'स्वामी' में लेखक ने प्रेम की भीतरी रूढ़ियों को तोड़ा है। चित्त दशाओं का मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है। प्रेम सम्बन्धों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य दिया है। संयुक्त परिवारी सम्बन्ध भावना को सुदढ़ किया है।

मिलता है श्रम का फल है। महिला ने दूसरी बार निवेदन किया कि बदले में वह उसके घर की टहल आदि कर देगी। इस बार जिल्द साज का ध्यान टूटा। भीतर का पत्थर पिघला। उसने बिना पारिश्रमिक के बालक रज्जब की किताब की जिल्द बना दी। अपने घर के एक हिस्से में महिला को बिना किराये के रहने की जगह दे दी। महिला ने उसका खाना भी बनाना शुरू कर दिया। सानिध्य के कारण जिल्द साज के भीतर का स्त्री-प्रेम जागा। उसकी आसक्ति बढ़ी। गुलशन से शादी तक का प्रस्ताव कर दिया। गुलशन ने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। कहानी के अंतिम शब्द हैं 'मिलन के प्रारंभ में जिल्द साज कठोर था, मिलन के अन्त में रज्जब की माँ।' इस तरह यह कहानी 'जिल्द साज' के कठोर नीरस स्वभाव के भीतर प्रवेश कर सोए प्रेमतत्व को पिघलाती है, रिक्तता को तोड़ती है और गुलशन के बहाने उसके स्वभाव को बदल देती है। कहानी कहती है कि 'तब से जिल्द साज अपनी खोल से बाहर आकर जगत के प्रति अनुरागी हो गया है।'

'पत्नी' कहानी शरद और नवीन की कहानी है। नवीन में पुरूषोचित अहंकार है, वह पत्नी को रूढ़पुरूषवादी स्वभाव के चलते आज्ञाकारिणी और सेविका की तरह देखता है। स्त्री उसके लिए भोग्या है, उसकी इच्छा के अनुसार जिस्म परोसने वाली। शरद पत्नी के अलावा घर में बहू भी बनी रहना चाहती है। नवीन के प्रति प्रेम है, रति भाव के अंकुरण हैं : पर वह अपने आश्रय के रहते भाव के भीतर विभाव-अनुभाव-संचारी भावों की दशाओं से गुजर कर दो पात्रों के बीच साधारणीकरण का विकास चाहती है। वह रूकती है, छिपाती है, ललचाती है और पति के भावोद्रेक को वर्चस्व के सांचे से बाहर लाना चाहती है। लेखक की टिप्पणी दोनों की इस मनोदशा को व्यक्त करती है, 'नवीन में प्रेम का क्षणिक ज्वार है और शरद में प्रेम-प्रवाह'। वह कामातुरता की सीमाओं को लांघकर प्रेम के राज्य में आना चाहती है। लेखक की निगाह में यही प्रेम राज्य गुलाम समाज को आजाद समाज में बदलता है। 'स्वामी' कहानी इसी कहानी की पूरक नजर आती है। 'कामिनी' के किशोर वय में गाँव में व्याहे गए एक युवक ने रति का भाव अंकुरित कर दिया। उसका पति 'महिम' नीरस और स्वार्थी निकला। उसने 'कामिनी' को सामान्य पत्नी के वजाय प्रेमिका नहीं बनाया। उसकी मूल भावनाओं की कद्र नहीं की। वह मात्र उसकी कामेच्छाओं की पूर्ति का आधार बन गयी। विवाह के बाद भी कामिनी में वास्तविक प्रेम का भीतरी विस्तार पहले मिले युवक के कारण ही हो रहा था। उसे समाज के अन्य जोड़े-पति-पत्नी सम्बन्धों में अंतरंगता और प्रगाढ़ता देखकर ईर्ष्या होती थी। कामिनी ने खुलकर पति से उसके अधखिले रूखे स्वभाव के बारे में बातें भी कीं पर वह न समझ सका। कामिनी पहले अपने अधूरेपन को छिपाती रही और कुढ़ती रही, अन्ततः स्वीकार किया कि 'सचमुच मेरी उनसे ठीक नहीं निभती।' लेखक की ओर से कहानी की अंतिम पंक्ति है- 'वे उन्मादी बादल तब भी आकाश में छिटकते ही आते थे।'

वनमाली की इस दौर की एक अन्य कहानी 'सन्तरे वाली' है। चन्दा एक स्त्री जो विधवा किन्तु युवा है। जिस समाज में विधवाओं की अन्तर्वृत्तियों को दबाने और नष्ट करने का क्रूर विधिविधान रहा है, उसमें वनमाली ने चन्दा के खुले जीवन प्रवाह को चित्रित किया है। चन्दा ठेले में घूम-घूमकर सन्तरा बेंचती है। कॉलेज के छात्रावास में युवकों से हँसने-ठिठोली करने के लिए ठेला लगाती है। छात्रों के बीच 'अवनि' नामक युवक इस विनोद में दिलचस्पी नहीं लेता- तो समय पाकर चन्दा उसे उकसाती है। पड़ोस में रहने के लिए किराए का कमरा तक देती है। अवनि में उसके प्रति जैसे ही उत्सुकता जागने लगती है, वह एक कदम आगे बढ़ाने को होता है। दोनों के सुप्त मनोभाव एक दूसरे से जुड़ने लगते हैं कि चन्दा अपना घर छोड़कर अन्यत्र चली जाती है। किरणों की एक दूसरे की ओर खिंची 'तार' पीछे लौट जाती है। कहानी में लेखक ने युवकोचित आकर्षण का वातावरण रचा है और उसका अन्त अप्रत्याशित सा कर दिया है। कदाचित् चन्दा और युवक एक दूसरे के साथ शरीर बन्धन में बंध जाते तो कहानी भावुकतावादी हो जाती। यशपाल के प्रायः पात्रों में प्रेम सम्बन्धों की परिणति शरीर सम्बन्धों में होती थी जिसे 'चोली-घाघरावाद' कहा जाने लगा था। शायद रचना का यह लक्ष्य प्रेम विस्तार को बाधित करने जैसा बन जाता है। वह उसकी प्रवहमानता को रोकता है।

कहानी 'जिल्द साज' में प्रेम-प्यास के आश्रय आलम्बन का संसार अलग है उसमें अधूरे आदमियों को करीब लाकर पूरेपन की पहचान के संकेत दिए गए हैं। 'गुलशन' अपने मृत पति के प्यार को नहीं भूलना चाहती अन्यथा 'जिल्द साज' और 'गुलशन' का अलग प्रेम राज्य बनता। 'पत्नी' और 'स्वामी' में लेखक ने प्रेम की भीतरी रूढ़ियों को तोड़ा है। चित्त दशाओं का मनोवैज्ञानिक विवेचन किया है। प्रेम सम्बन्धों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य दिया है। संयुक्त परिवारी सम्बन्ध भावना को सुदढ़ किया है। बाद के कथाकारों ने प्रेमी-प्रेमिका की स्वायत्तता को पारिवारिक विखंडन तक पहुंचाया है। वनमाली की कहानियाँ इस दशा में बारीकियों को खोलती हैं और 'भोग व्यापार' से परहेज करती हैं। उनके लिए केन्द्रीभूत परिणाम और उसके लिए ज्वार सा आवेग लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य है प्रेम-वृत्ति में जीवन का खुला-अकृत्रिम सम्बन्ध व्यापार।

'काकी' कहानी में 'प्रेम' के ही अंश स्नेह के भीतर की मनोग्रंथि का विभेदन है। संयुक्त परिवार में माँ के रहते हुए महिम काकी का सर्वाधिक स्नेह पात्र है। वह चाहता है कि काकी के स्नेह में बंटवारा न हो। हस्तक्षेप न हो। वह भूल गया कि काकी पत्नी भी है और परिवार के अन्य पात्रों से और-और रिश्ते हैं। अन्य रिश्तों के निर्वाह की स्थिति में वह रूठ कर सीमाएँ पार कर गया। नाराज हो गया। महिम की माँ के समझाने आदि से उसे अपनी भूल का अहसास हुआ। इस तरह कहानी स्नेह भाव के वर्चस्व को तोड़ती है। 'रेल का डिब्बा' और 'सभ्य' कहानियाँ- इन कहानियों से अलग जीवन व्यापार की हैं। अन्य कहानीकारों की भाँति जीवन के बहुरंगी स्वभाव को व्यक्त करने के लिए रेल का डिब्बा को आधार बनाया है। हरिशंकर परसाई कहते थे- तीसरे दर्जे में दिन का सफर करो, सब कुछ मिल जायेगा। इसी संसार की कथावस्तु पर केन्द्रित स्वयं प्रकाश की कहानी है- 'नीलकान्त का सफर'। वनमाली ने रेल का डिब्बा को सामाजिक जीवन की वर्गीय विषमताओं को चिन्हित करने के लिए वर्ण्य विषय के रूप में ग्रहण किया है। जिस डिब्बे का जिक्र है- उसमें यात्रियों का एक समूह पहले से बिस्तर खोल पैर फैलाए लेटा है। दूसरा समूह बैठा है पर अधिक स्थान ग्रहण किए हुए हैं। इन्हीं के बीच एक मजदूर दम्पत्ति है जिसके पास किराए तक का पैसा नहीं है। इलाके में मजदूरी की गुंजाइश न होने से काम की तलाश में उद्योग नगरी 'टाटा नगर' जा रहा है। टिकिटधारी समूह डिब्बे में घुसकर उसे अपनी जगह से उठाकर खुद बैठ जाता है। इन्हीं भिन्न-भिन्न समूहों की गतिविधियों पर निगाह डालने वाला एक 'मैं' नाम का पात्र बैठा है। उसे समान किराया अदा करने के बावजूद अनाधिकृत कई लोगों की जगह घेरे हुए सोने से एतराज है। सोने वाले एक सज्जन का तर्क है- कानून में किसी को मिले हुए आराम को छीनने का हक नहीं है। आराम और तकलीफ तो भाग्य का खेल है। उसे झेलना ही होगा। कैसे विचित्र तर्क हैं। इसी तरह के कारणों के अपने-अपने तर्कों की खोल में आदमी बन्द है। रेल के डिब्बे में टी.टी. आया तो उसने अपना ध्यान उन पर केन्द्रित किया- जो असमर्थ बिना टिकिट हैं। उसने उनके साथ बदसलूकी शुरू की- तो 'मैं' ने हस्तक्षेप किया- 'कानूनी कार्यवाही के अलावा गाली-गलौच का हक नहीं है आपको' टी.टी. चिढ़कर फिलहाल तो चला गया- पर अगले स्टेशन पर उन्हें उतार दिया। टी.टी. का ध्यान उन लोगों पर नहीं गया जो सीटों पर अनधिकृत कब्जा किए हैं। व्यवस्था के इसी वर्गीय खेल का अनुभव 'मैं' को हुआ। उसे स्वयं कुछ न कर पाने पर शर्मिन्दगी भी अनुभव हुई। 'मैं' ने मजदूर से कहा कि टिकिट के पैसों के लिए माँग-जाँच लेते। मजदूर ने कहा- उसे माँगने से नफरत है। पसीने पर भरोसा है। 'मैं' ने उन्हें ठण्ड से सिकुड़ते देख अपना कम्बल देना चाहा। मजदूर ने दूसरों की दया पर जीने की वजाय 'स्वाभिमान' पूर्वक कष्ट का जीवन जीने का स्वभाव बताया। डिब्बे के भीतर की गतिविधियों पर दर्शक बने वे सज्जन जिन्होंने मजदूर दम्पत्ति को उठा दिया था- अपने व्यवहार पर दुख व्यक्त करने लगे। उन्होंने अपना परिचय सुधीन्द्र नामक लेखक के रूप में दिया। 'मैं' ने जानना चाहा कि किसी परिचित पत्र में 'प्रगतिवाद' पर छपा लेख क्या उन्हीं का है। उन्होंने हामी भरी। लेख में वर्ग संघर्ष और क्रांति के रास्ते की वकालत थी। कहानी के अन्त की लेखकीय टिप्पणियाँ मनुष्य के नकली आचरण पर कटाक्ष हैं। इसके पूर्व मजदूर दम्पत्ति के रेल के डिब्बे से उतारे जाने और फिर लेखक सुधींद्र के लेख और आचरण को मिलाकर देखने पर लेखक के नजरिए का खुलासा होता है।

पहली टिप्पणी- 'अब ऐसे आदमी को क्या मिलेगा? टिकिट चेकर के लात घूंसे, पुलिस वालों की गालियाँ, सड़कों पर भीख माँगना? क्या ऐसी परिस्थिति में उस आदमी के भीतर छिपा ज्ञान लुप्त नहीं हो सकता? उस ज्ञान के लुप्त होने पर आदमी के अन्दर जो बवाल पैदा होगा उसके लिए कौन जिम्मेदार होगा। क्या यही समाज नहीं, जिसे व्यक्ति ने अपने विकास के लिए खड़ा किया है?'

दूसरी टिप्पणी- 'इस दुनिया में लेखों द्वारा वर्ग संघर्ष और क्रांति की जाती रहेगी- परन्तु इन गरीबों को बस कोरी सहानुभूति ही पल्ले पड़ेगी।'

आपको याद होगा- प्रेमचन्द के अंतिम अधूरे उपन्यास 'मंगलसूत्र' का नायक यही कहता है कि अगर और रास्तों से कोई परिवर्तन न हुआ, मनुष्य को उसका हक न मिला तो हथियार उठाने ही पड़ेंगे। आज समाज के एक समूह द्वारा हथियार उठा लिया जाना ही घोटालेबाज सरकारों के लिए चुनौती बना हुआ है। बीसवीं सदी के चौथे दशक में लिखी वनमाली की कहानी उनकी प्रखर वर्गीय राजनीतिक दृष्टि को प्रकट करती है। इसकी बुनावट सभ्यता समीक्षा मूलक है। अन्य कहानी 'सभ्य' को इसी क्रम में पढ़ना चाहिए। 'सभ्य' कहानी में दो .श्य हैं। 'सभ्यता' और 'असभ्यता' के बीच लेखकीय आत्ममंथन है। राधे मध्यवर्गीय समाज से आने वाला सभ्य आदमी और संयोग से लेखक है। उसके सामने-फुटपाथ पर अपाहिज भिखारियों के बीच गंदी कुतिया को संगी-साथी बनाए बैठा-स्वस्थ आदमी है। वह भीख नहीं माँगता। दाताओं पर निर्भर है कि उसे कुछ दें या न दें। जो मिलता है उसमें कुतिया की भी हिस्सेदारी है। राधे दयापूर्वक अपाहिजों पर उपजी करूणा और दया से प्रेरित भिक्षा देता है, पर उस स्वस्थ आदमी के प्रति उसमें दया भाव नहीं उमड़ता। बल्कि घृणा उत्पन्न होती है। एक तो शरीर से पुष्ट, काम के योग्य और गंदी कुतिया से दोस्ती, फिर दाताओं से अधिकारपूर्वक भिक्षा पाने का अधिकारी समझता है। राधे ने उसे काम दिलाने को कहा- तो उल्टे सवाल कर बैठा। दार्शनिक उक्ति दोहरा दी- 'काम ही तो दुनिया में सब कुछ नहीं है बाबू।' राधे ने वहाँ से गुजरते बार-बार स्वयं से पूछा कि स्वार्थ और मतलब के बिना इस आदमी को दान देने के लिए उसका दयाभाव क्यों नहीं उमड़ता? क्या सभ्यता के दायरे में इस आदमी के प्रति दया भाव का फैलाव नहीं आता। उसके मन में विरोधी भाव आते। कभी दयाभाव आता भी तो जेब से पैसे निकालने लगता। फिर घृणा भाव उभरता तो सिकोड़ लेता। राधे कुछ दिनों बाहर रहने के बाद वापस आया- तो वह आदमी चेचक की बीमारी के कारण अंधा हो चुका था। कुतिया की जगह एक लड़की ने ले ली थी। वह अंधों के लिए आने-जाने वालों से भीख माँगती। ज्ञात हुआ कि कुतिया ही लड़की को खोज लायी थी। इस बार राधे के मन में द्वन्द्व रहित दया का भाव जागा-तो उस भिखारी ने कहा 'मेरे भाग्य बाबू। आंखे खोकर तुम्हारी दया पा सका।' राधे ने लड़की के बारे में सोचा कि उसका इस जगह क्या भविष्य होगा- 'प्रेम सौदा और छीना झपटी'। राधे ने चाहा कि इन्हें दान दे पर बहन की शादी का ध्यान आया तो- तो जेब से हाथ खाली लौट आया। इस कहानी में मध्यवर्गीय लेखकीय आत्म संघर्ष का अहम मुद्दा है। 'सभ्यता ने मनुष्य को कैसा दरिद्र और मरभुखी कर दिया है। बिना हिसाब-किताब के अपना एक कन भी किसी पर नहीं खर्च करना चाहता।' दरअसल यह कहानी सभ्य समाज के जटिल अन्तर्विरोधों को स्पष्ट करती है। जटिल इस अर्थ में हमारा बड़ा समाज दान, दया, परोपकार आदि को सबसे बड़ा मानवीय मूल्य मानता आया है। इसकी पड़ताल की जरूरत नहीं समझी। इन्हीं के पोषण हेतु बड़े-बड़े उद्योग घराने 'धर्मादा' चलाते हैं। कोई यह नहीं देखता कि इन मूल्यों के बदले मनुष्य की अधिकार चेतना लुप्त हो जाती है। आज भी सत्ताएं जनता के सामने दाता की तरह पेश आती हैं। वनमाली जी ने स्वस्थ भिखारी के मार्फत लोगों की अतिरिक्त कमाई में से अधिकार पूर्वक हिस्सेदारी की अपेक्षा की है। ऐसी हिस्सेदारी जिसमें पशु-पक्षी भी शामिल हों। मनुष्य और जानवरों की दोस्ती स्वाभाविक है। सभ्यता ने इनके बीच दूरियाँ बना दी हैं। राधे नामक मध्यवर्गीय आदमी का आत्म मंथन एक तरह सभ्यता की प्रत्यालोचना है।रामनाथ सुमन को लिखे पत्र में वनमाली जी ने आलोचना-प्रत्यालोचना की जिस जरूरत का उल्लेख किया था, कहानियाँ उसे सिद्ध करती हैं। मैं मानता हूँ कि वनमाली का कथा संसार वस्तु-शिल्पकी दृष्टि से बहुत समृद्ध और शानदार है। स

स्व.कमलाप्रसाद

सुषमा दुबे की लघुकथाएँ

इन्दौर की सुषमा दुबे महिला लघुकथाकारों में एक नया उभरता हुआ नाम है। अपनी लघुकथाओं से सामाजिक संदेश देने वाली सुषमा जी लघुकथाओं के अलावा कई लेख, कविताएँ व कहानियाँ भी लिख चुकी हैं! घर-परिवार और रिश्तों को मूल रूप से अपनी लघुकथाओं में उभारने वाली सुषमा जी की पहली लघुकथा 'तेरी माँ-मेरी माँ' पारिवारिक पृष्ठभूमि की सबसे मार्मिक लघुकथा प्रतीत होती है। इस लघुकथा में सुमित अपने छोटे भाई से फोन पर कहता है कि - ''माँ को मेरे साथ रहते-रहते २० दिन से ज्यादा हो गये हैं। अब ये तेरी जिम्मेदारी है कि तू माँ को अपने साथ ले जा।'' छोटे भाई की अपनी समस्या है! वो नौकरी का हवाला भी देता पर बड़ा भाई का दबाव बढ़ता ही जाता है और ये सब बातें ऊपर के कमरे की खिड़की से माँ सुन लेती है। आँखों से बहती अश्रुधारा के साथ दोनों भाईयों का बचपन वाला वो झगड़ा उसे याद आता है जिसमें वो मेरी माँ, मेरी माँ कहकर झगड़ते थे।

'अनमोल भेंट' पारिवारिक घटनाक्रम का अच्छा उदाहरण है। बेटी अन्वी की हमउम्र कामवाली बाई को अर्पिता एक दिन की छुट्टी मनाने पर बुरी तरह डाँट रही थी। पर थोड़ी देर बाद अपनी कामवाली बाई में उसे अन्वी दिखाई दी। ममत्व से भरा हाथ उसके सर पर रखते हुए वह जब यह कहती है- ''तू भी मेरी बेटी जैसी है। क्या हुआ जो कल नहीं आ पाई। वैसे भी त्यौहार के बाद किसका मन होता है काम पर आने का। तब एक स्त्री दूसरी स्त्री के साथ खड़ी दिखाई देती है। यहाँ बात केवल माँ बेटी के रिश्ते तक ही सीमित दिखाई नहीं देती। वरन संवेदना को नया आयाम भी देती, प्रतीत होती है। सही अर्थों में आज के समय की माँग ही यही है कि हर स्त्री दूसरी स्त्री को समझे और साथ खड़ी रहे।

'आशीर्वाद या श्राप' लघुकथा भी स्त्री केन्द्रित लघुकथा है। विषय पुराना है। इसमें सास-बहू की तू-तू मैं-मैं है। पर हर बार की तरह वही कहानी की सास भी कभी बहू थी या कभी तू भी तो सास बनेगी जैसे जुमलो को चरितार्थ करती है। श्राद्ध पक्ष का दिन है। घर में पंडितजी सहित घर के सभी सदस्य भोजन कर चुके हैं। बस बेचारी बूढ़ी विधवा सास ही अब तक भूखी बैठी है। बासी खाने को देखकर उसका दबा हुआ गुस्सा मानों किसी बवन्डर सा दिखता है। और लम्बी हाथापायी के बाद अपनी गर्भवती बहू को श्राप दे बैठती है कि ईश्वर करे इस बार तेरे यहाँ बेटा ही हो, वो भी तेरे साथ यही करे जो तू मेरे साथ कर रही है। इस लघुकथा का कलेवर देखकर मुझे सहसा प्रेमचन्द की 'बूढ़ी काकी' की कहानी याद आ गई जिसमें भोजन को तरस रही बूढ़ी काकी की मार्मिक दशा ने तब भी हृदय को झंझोर दिया था और आज भी इस कहानी की बूढ़ी सास में भी वही दर्द सामने आया है।

'नन्ही कोपल' नामक लघुकथा पर्यावरण संरक्षण का बहुत ही खूबसूरती से संदेश देती है। बढ़ती आबादी के द्वारा वनों के अंधाधुंध कटाई होने से ग्रस्त एक नन्हीं कोपल जब यह संकल्प लेती है कि वह भी अपनी परम्परानुसार विशाल वृक्ष बन कर लोगों की इस दुनिया को ठंडी हवा छाँव देने का काम करेगी कि तभी उसको यकायक रुलाई आ जाती है और संकल्प क्रोध और संताप से दुखी होकर वो नन्हीं कोपल वहीं मुरझा जाती है। इस स्वार्थी और नादान दुनिया को अपने हाल पर छोड़ देती है जिसने उस नन्हीं कोपल के खानदान को ज़मींदोज कर दिया।

'रिमोट वाली डॉल' नामक लघुकथा समाज के दो मुँहे चेहरे को बखूबी चरितार्थ करती है। अविका को लड़के वाले देखने क्या आए, अपनी होने वाली बहू में क्या-क्या खूबी होना चाहिए उसके लिए वे अविका का इन्टरव्यू लेने लगे। सवालों की लम्बी श्रृंखला को देख अविका का छोटा भाई एक वाक्य में सारी बातों पर यह कहकर विराम लगा देता है कि 'एक रिमोट वाली डॉल में भी इतने फीचर्स नहीं होते जितने आप एक जीती जागती लड़की में चाहते हैं। एक बार दीदी से भी पूछिये कि वे क्या चाहती है, अपने जीवन साथी में ?''

'आत्मरक्षा' रामायण की पृष्ठभूमि पर मंचित रामलीला का एक दृश्य भर नहीं है बल्कि यह आह्वान भी है कि इस युग में स्त्री का सबल होना अत्यन्त आवश्यक है। अब खोखली मर्यादा के दायरे से निकलकर और रूढ़ियों को तोड़कर ही आज के रावण से लड़ा जा सकता है। आत्मरक्षा में स्वर्ण मृग माँग रही सीता लक्ष्मण से जब यह कहती है कि- ''इस कलयुग में रावण जैसे अच्छे राक्षस कहाँ बचे है, जो लक्ष्मण रेखा लांघने का रास्ता देखे और अपहरण कर भी ले तो शरीर को नहीं छूए ? इसलिए तुम तो मुझे कटार दे दो ताकि विकट परिस्थिति में भी मेरा साहस नहीं टूटे और ये कटार मेरी रक्षा करे। तब कहीं ना कहीं लगता है कि रामायण काल में स्त्री ने भले ही आदर्श रचे हो किन्तु आज उसे अपनी रक्षा के लिए फिक्र करना ही होगी।

सुषमा जी को उनकी इन अच्छी लघुकथाओं के लिए हमारी शुभकामनाएँ!

चयन एवं प्रस्तुति - वाणी दवे शर्मा
मो.9009457992

तेरी माँ - मेरी माँ

''हैलो,सुमित तू कब आ रहा है माँ को लेने ?''

''भैया मुझे टाइम नहीं है आने का। ''

''अच्छा, वैसे भी 20 दिन तो ऊपर हो गए है तय समय से। अंशिता को रोज ऑफिस में लेट हो जाता है माँ की वजह से और आशु की एकजाम्स भी शुरू होने वाली है वो पढ़ता नहीं है दिनभर दादी के साथ ही लगा रहता है। कुछ भी कर लेकिन इस हफ्ते माँ को ले जा यहा से। '''''भैया समझो यहां मेरी नौकरी खतरे में है, मुझे छुट्टी मिलना मुश्किल है।'' ''देख अमित तू फालतू के बहाने बना कर माँ की जिम्मेदारी से छुटकारा पाने की कोशिश मत कर। वो तेरी भी माँ है।'' अपने भाई से बात करने पोर्च में आए सुमित की बातें ऊपर के रूम की खिड़की से सुन रही माँ को बेटो के खयालों का अंदाज तो हो गया था। तेरी माँ,तेरी माँ की लड़ाई सुनकर अपनी आँखों से बहती अश्रुधारा के साथ 8 और 10 साल के अमित सुमित की वो लड़ाई याद कर रही थी जिसमे वो मेरी माँ, मेरी माँ कहकर झगड़ रहे थे।

अनमोल भेंट

अर्चिता काम वाली लड़की को डांट रही थी,'' तुम लोगों को बस दीवाली का गिफ्ट चाहिए रहता है,काम के नाम पर जब देखो गोल मार देती हो। कारण था, दीवाली के दूसरे दिन आने का कहकर वो काम पर नहीं आई थी। लड़की सिर झुकाकर सुनती जा रही थी।

अर्चिता थोड़ी देर बाद बेटी अन्वी के रूम मे जाकर उसे जगाने लगी '' उठ जा बेटू,अन्वी बहुत छुट्टी मार ली आज कॉलेज खुल गए है। बेटी रजाई खींचकर फिर से ओढ़ते हुए बोली,'' माँ सोने दो न आज नहीं जाना वैसे भी त्योहार की मस्ती के बाद किसका मन होता है कॉलेज जाने का ? कल से जाऊँगी। अर्चिता मुस्कुरा कर उसे थपथपने लगी। बाहर आकर देखा काम वाली लड़की तन्मयता से पोंछा लगा रही थी। अर्चिता को उसमें अन्वी दिखाई दी। वह उसके पास गई और सिर पर हाथ फेर कर बोली,'' तू भी तो मेरी बेटी जैसी है, क्या हुआ जो नही आ पाई, वैसे भी त्योहार के बाद किसका मन होता है काम पर जाने का। तू पहले दीवाली की मिठाई खा ले फिर हम दोनों टीवी देखेंगे, आज कपड़े धोने की छुट्टी।'' गुमसुम सी लड़की अचानक मुस्कुरा उठी। उसकी मुस्कान देखकर अर्चिता को महसूस हुआ की प्रेम दुनिया की सबसे अनमोल भेंट है।

आशीर्वाद या श्राप

''हाँ, हाँ, तू ही भर ले पकवानों से अपना पेट, खूब खिला पंडित जी को और दूसरे लोगों को और मुझे देदे वही बासी कूसी 2 दिन पुराना खाना। '' श्राद्ध पक्ष में पकवानों की आस लगाए बैठी काशी बासी खाना देखकर भड़क उठी। विशाल के घर से आए दिन ऐसी ही आवाजे पड़ौसियों को सुनाई देती रहती थी।विशाल की पत्नी अपनी बूढ़ी और विधवा सास के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती थी, उसे एक अलग कमरे में पटक रखा था उसने। बात और बढ़गई सास बहू के तू-तू मैं मैं ने बड़ा रूप ले लिया धक्का-मुक्की में काशी बाई जमीन पर गिर गई। दोनों पोतियाँ माँ और दादी को समझाने में लग गई। तभी जमीन पर गिरी काशी बाई में न जाने कहाँ से ताकत आ गई वह जमीन से उठकर तन कर खड़ी हो गई और ऊंची आवाज मे चिल्लाने लगी,'' ईश्वर करे इस बार तेरे यहाँ बेटा ही हो, वो भी तेरे साथ यही करे जो तू मेरे साथ कर रही है। मेरा भगवान सब देख रहा है, इस व्यवहार का तुझे आज नहीं तो कल फल जरूर मिलेगा। ''दो बेटियों के बाद फिर से गर्भवती बहू के पैर सास की बात सुनकर वहीं जम गए,दोनों कानों में पिघला सीसा पड़ गया मानों, वो सोचने लगी इसे सास का आशीर्वाद माने या श्राप ?'

''नन्ही कोपल''

वहाँ कभी घने -हरे वृक्ष हुआ करते थे। धीरे -धीरे आबादी बढ़ी और पेड़ लोगो की आवश्यकताओं की भेंट चढ़ने लगे। सड़के चौड़ी होने लगी,मकान,दुकाने बढ़ने लगी। बड़ी बड़ी होटल्स,मॉल और स्कूल-कॉलेज खुलने से लोग कहने लगे ये इलाका बहुत आबाद हो गया है !! अब वहां पेड़ो के जंगल की बजाय सीमेंट-कंक्रीट के जंगल ज्यादा दिखाई देने लगे।

एक दिन ऐसा आया कि वहां केवल कांक्रीट के जंगल और पेड़ो के ठूठ ही रह गए थे। मौसम बदला और झमाझम बारिश शुरू हो गई। 2-3 दिन की बारिश के पश्चात एक ठूंठ से एक नन्ही कोमल पत्ती ने झाँका,आँखे मलते हुए उसने आसपास का नजारा देखा तो सहसा उसकी रूलाई फूट पड़ी। उसका तो पूरा खानदान ही नष्ट हो चुका था। थोड़ी देर रोने के बाद उसने हिम्मत बंटोरी और मन ही मन संकल्प लिया कि वह बड़ी होकर विशाल वृक्ष बनेगी और दुनिया को फिर से ठंडी हवा,छाँव और जीवन देगी। अगले ही पल उसने फिर विचार किया.... किसके लिए करेगी वो ये सब.... उसी निष्ठुर मानव के लिए जिसने खुद का भला बुरा सोचे बिना मेरे परिवार पर इतने कुठाराघात किये....उसी को खत्म कर डाला जो उनके भले के लिए जन्मे थे !!

ये सोचकर वो नन्ही कोपल वही मुरझा गई ,इस स्वार्थी और नादान दुनिया को अपने हाल पर छोड़कर!

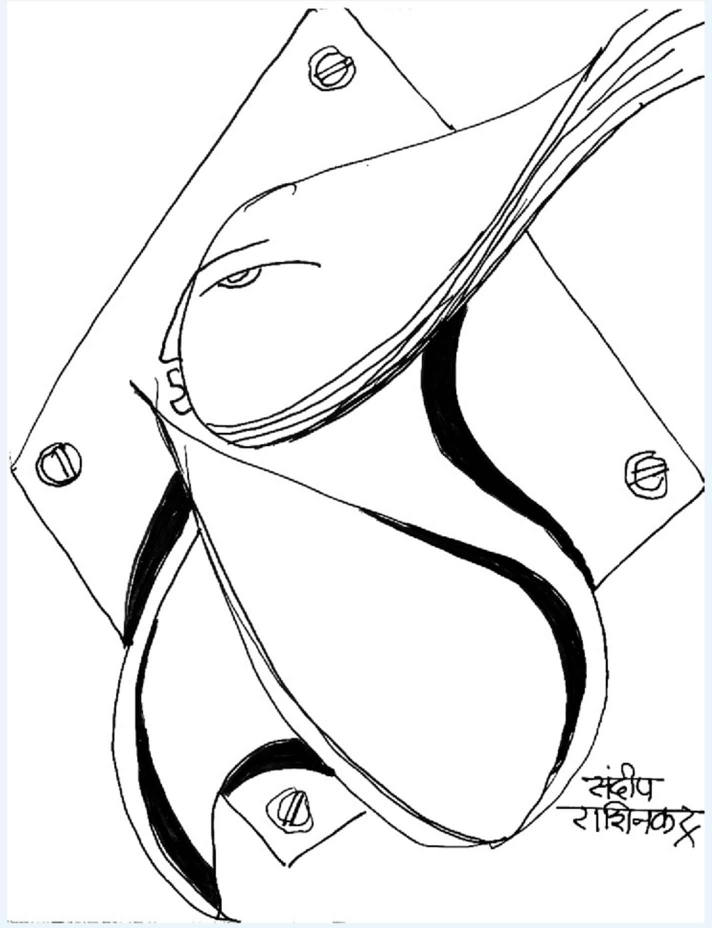

रिमोट वाली डॉल

लड़के वाले अविका को देखने आए थे, दोनों तरफ से सवाल जवाब का दौर चल रहा था।

"बिटिया क्या पढ़ाई की है तुमने? जी अंकल एमटेक किया है और एक कंपनी में जॉब भी करती हूं।"

"साहब जॉब का क्या रहेगा बिटिया के?"

जॉब वाली बहू की इच्छा नहीं है हमारी, बाकी हां टाइम पड़ने पर कमा कर घर चला ले इसलिए एडुकेटेड तो होना ही चाहिए। " "हमारे यहा हर काम के लिए बाइयाँ है लेकिन खाना तो भाई बहू ही बनाए तो अच्छा रहता है और ये जीन्स वीन्स नहीं चलेगी हमारे यहाँ।" "आपके यहा घूंघट का प्रचलन है क्या?" हां, यू तो नहीं लेकिन जब पूरा परिवार इकट्ठा होता है तो घूंघट लेना ही पड़ेगा।" लड़की के माता - पिता चुपचाप उनकी बातें सुनते जा रहे थे बीच बीच में काजू किशमिश, मिठाई -नमकीन की प्लेट भी उनके आगे करते जा रहे थे। ये सब देखकर अविका के 15 वर्षीय छोटे भाई से नहीं रहा गया, वो बोला मम्मा- पापा, आंटी- अंकल आप लोग बुरा न माने तो एक बात पुछू ? हां हां बेटा पूछो। मैं पिछले हफ्ते रिमोट वाली डॉल खरीदने गया था किसी को गिफ्ट करने के लिए, लेकिन उसमे भी इतने सारे फीचर्स नहीं थे जितने आप एक जीती जागती लड़की में चाहते है, डॉल रिमोट वाली जरूर है लेकिन उसके फीचर्स भी कंपनी ने तय करके दिये है। प्लीज आप लोग एक बार दीदी से भी तो पूछकर देखिये कि वो अपने होने वाले घर वालों से क्या एक्सपेक्टशंस रखती है ? और क्या मैं अपने होने वाले जीजू से ये बातें तय कर सकता हूँ कि उन्हे क्या करना और क्या नहीं करना होगा दीदी से शादी के बाद? यह सब सुनकर सभी निरूत्तर थे।

''आत्मरक्षा''

पंचवटी से सीता को स्वर्ण मृग दिखायी दिया,उसने श्रीराम को कहा नाथ मुझे अपने वस्त्र निर्माण हेतु वो स्वर्ण मृग चाहिए। श्रीराम तुरंत उस मृग के पीछे दौड़े। थोड़ी ही देर बाद वन से हा.... लक्ष्मण कि आवाज सुनायी दी, सीता ने लक्ष्मण को कहा -"तुम वन में जाओ,तुम्हारे भ्राता किसी संकट में है"।

लक्ष्मण धर्मसंकट में फंस गए थे,भाभी के रक्षार्थ कुटिया में ही रूके या भाई की सहायता के लिए वन में जाये ? तभी उन्होंने अपने बाण से कुटिया के चारों और एक रेखा खींच कर कहा "माते,किसी भी परिस्थिति में आप ये रेखा लाँघिएगा मत।" सीता ने कुछ सोचते हुए कहा - "इस कलियुग में रावण जैसे अच्छे राक्षस कहाँ बचे है,जो इस रेखा को लांघने का रास्ता देखे, और यदि अपहरण कर भी ले तो मेरे शरीर को छुए नहीं ?

तुम एक काम करो,अपनी कमर में खुंसी ये कटार मुझे दे दो, विकट परिस्थिति में मेरा साहस और ये कटार ही मेरी रक्षा करेगी। रामलीला के मंचन में ये प्रसंग देखकर दर्शक दीर्घा में बैठे लोगो ने खड़े होकर जोर -जोर से तालियां बजाना शुरू कर दिया था।

सुषमा दुबे

जन्म - 9 मार्च 1970

शिक्षण- बेचलर ऑफ साइंस,, बेचलर ऑफ जर्नलिज्म, डिप्लोमा इन एक्यूप्रेशर।

संप्रति - आल इण्डिया रेडियो, इंदौर में आकस्मिक उद्घोषक। कुछ पत्रिकाओं में सम्पादक/ सहसंपादक और स्तम्भ लेखिका, प्रेसिडेंट अक्षय वेलफेयर सोसाइटी (वुमेन एंड चाइल्ड वेलफेयर ब्रांच), अध्यक्ष संस्था विचार प्रवाह।

राष्ट्रीय एवं स्थानीय पत्र/ पत्रिकाओं में 700 से अधिक आलेखों, कहानियों, लघुकथाओं कविताओं, व्यंग्य रचनाओं एवं सम सामयिक विषयों पर रचनाओं का प्रकाशन,राज्य संसाधन केंद्र, इंदौर से नवसाक्षरों के लिए बतौर लेखक 15 से ज्यादा पुस्तकों का प्रकाशन, राज्य संसाधन केंद्र में बतौर संपादक/ सहसंपादक 35 से अधिक पुस्तकों का लेखन, पुनर्लेखन एवं सम्पादन, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली से नवसाक्षरों हेतु एक पुस्तक प्रकाशित, दैनिक दबंग दुनिया, इंदौर मे बतौर फीचर एडिटर महिला, स्वास्थ्य,सामाजिक विषयों, बाल पत्रिकाओ, सम सामयिक विषयों एवं फिल्म साहित्य पर लेखन एवं सम्पादन।

कई सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाओ द्वारा अनेक सम्मान

इंदौर लेखिका संघ की प्रचार मंत्री, इंदौर की कई साहित्यिक/सामाजिक संस्थाओ की सदस्य। सामाजिक कार्यों एवं गतिविधियों में विशेष रूचि।

संपर्क - 7- dk-1 स्कीम नंबर 74-, विजय नगर, इंदौर

मेल - sushmadubey7n@gmail.com

मो.नं. 8982372410

चित्रों में बाबा डिके

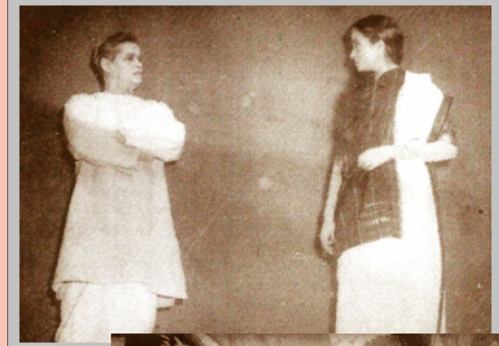

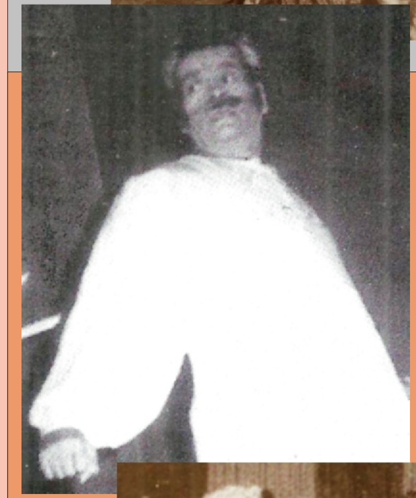

चित्रों में बाबा डिके

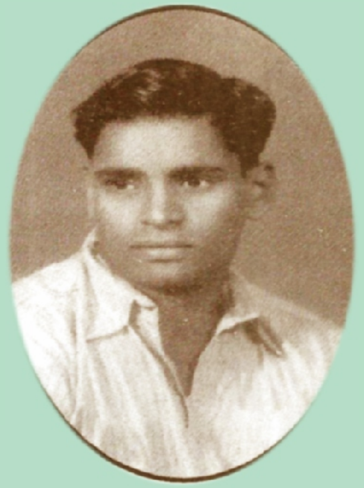

चित्रों में वनमाली जी

चित्रों में विश्वम्भर नेवर

श्री विश्वंभर नेवर

संपर्क : छपते-छपते हिंदी दैनिक
37, सेक्सपीयर सरणि, प्रथम तल, कोलकाता-700017
मोबाइल - 9831669988

जन्मतिथि : 8-5-1943

शैक्षणिक योग्यता : बी कॉम, एल एल बी

आजीविका : पत्रकार

कार्यक्षेत्र :

तीन बार भारतीय प्रेस काउंसिल के सदस्य, कुल 9 वर्ष

- महासचिव, ऑल इंडिया न्यूजपेपर एडीटर्स कांफ्रेंस
- सेंट्रल प्रेस एक्रीडीएशन कमिटी, पी आई बी, सूचना व प्रसारण मंत्रालय के सदस्य
- मुख्य संपादक, छपते-छपते हिंदी दैनिक, (कोलकाता व कटिहार से प्रकाशित)
- मुख्य संपादक, संध्या छपते-छपते, सांध्य दैनिक
- निदेशक -ताजा टीवी,
- रूस, इंग्लैंड, फ्रांस, चीन, स्विट्जरलैंड, जर्मनी, बांग्लादेश, नेपाल आदि के दौरे

सामाजिक क्षेत्र में ...

महासचिव, भारत रिलीफ सोसायटी, कोलकाता में स्थित एक महत्वपूर्ण गैर सरकारी संस्था

पूर्व अध्यक्ष, पश्चिम बंगाल प्रांतीय मारवाड़ी फेडरेशन

पूर्व उपाध्यक्ष, अखिल भारतीय मारवाड़ी फेडरेशन

सदस्य, राजस्थान फाउंडेशन, कोलकाता अध्याय, राजस्थान के मुख्यमंत्री द्वारा निर्मित

भूतपूर्व - JUSTICE OF PEACE कोलकाता

पूर्व सदस्य, कलकत्ता टेलीफोन एडवाइजरी कमिटी

पूर्व सदस्य, इंडियन एयरलाइन्स एडवाइजरी कमिटी- पूर्वी शाखा

पूर्व सदस्य, गवर्निंग काउंसिल हिंदी अकादमी - पश्चिम बंगाल सरकार

पुरस्कार :

इंदिरा गांधी लाइफ टाइम एचीवमेंट एवार्ड

मदर टेरेसा अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार 2016

बंग सम्मान सेवा

सामला हरोनी पुरस्कार

मीडिया क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान हेतु प्रजापति ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय द्वारा।

इसके अतिरिक्त दामोदर घाटी कारपोरेशन, स्पंदन, नवयुवक संघ, पोस्ता जैसी असंख्य संस्थाओं द्वारा सम्मानित

लगभग 200 पृष्ठों में आपकी आत्मकथा ''यादों के उजाले'' प्रकाशनाधीन

जो घर फूंके आपनो चले हमारे साथ.....

विश्वम्भर नेवर

सामाजिक परिवर्तन के इतिहास पर नजर डालिये। इसके कुछ ऐतिहासिक तथ्यों को समझने की कोशिश कीजिए। सामाजिक सुधार या परिवर्तन आजाद भारत की आधारशिला है। गांधीजी ने राष्ट्र की स्वतंत्रता को लेकर जो आंदोलन किया था, वह सिर्फ कांग्रेस के नेताओं के भरोसे नहीं किया था। उन्होंने हरिजन उद्धार, नारी शिक्षा, खादी का प्रचार, हिंदी का प्रसार, भूदान आदि-आदि कार्यों के लिए कई संस्थाओं को स्थापित किया और उसके लिए अलग-अलग कार्यकर्ताओं को उत्तरदायित्व दिया। इन सब कार्यों के लिए जो लोग आगे बढ़े उन्होंने गांधीजी के नेतृत्व में काम किया था। आजादी हासिल करने के साथ इन सभी कार्यों में घेलमेल नहीं किया। महात्मा जी जानते थे कि जब तक समाज में बुराइयां रहेंगी आजादी का आंदोलन कभी सफल नहीं हो पाएगा। दरअसल गांधीजी जीवन में पवित्रता पर विश्वास करते थे। अस्पृश्यता, हरिजन मुक्ति, सामाजिक विसंगतियों आदि विषयों पर उनके विचार स्पष्ट थे। गैर हिंदी भाषी होते हुए भी उन्होंने हिंदी की जन शक्ति को आंका था। अपनी प्रार्थना सभाओं में भी वे सामाजिक विषयों पर व्याख्यान दिया करते थे। गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर रवींद्रनाथ टैगोर जैसे बड़े कवि, मुंशी प्रेमचंद की कहानियों में भी सामाजिक परिवर्तन केंद्र बिंदु रहा।

इसी के बलबूते पर उन्होंने विदेशी कपड़ों की होली जलाने का सफल अभियान किया। अहिंसा में उनका अटूट विश्वास था और इस मुद्दे पर उन्होंने कभी समझौता नहीं किया।

आजकल सामाजिक कुरीतियों को दूर करने की बात दोहराई जा रही है। मारवाड़ी समाज इसमें अगुआ रहा है। अतीत में इस समाज ने कई बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। शिशु विवाह, दहेज, आडंबर, फिजूलखर्ची इन सब पर समाज के लोग आंदोलन कर चुके हैं। मृतक भोज, शादी की बारातों का कई दिनों तक लड़की वालों से आवभगत कराना, बेमेल विवाह के विरूद्ध प्रभावशाली ढंग से काम किया गया। मृतक भोज में कार्यकर्ता घुस जाते और इसका विरोध करते थे। इसी तरह घूंघट की प्रथा का विरोध किया गया। दहेज दावानल के खिलाफ हर स्तर पर विरोध किया जाता था। आडंबर एवं फिजूलखर्ची के खिलाफ भी प्रदर्शन किए गए। दो विचारधाराएं काम कर रही थीं। एक वह थी जो दकियानुसी और पुरानी परंपराओं को अक्षुण्ण रखना चाहती थी और दूसरी समाज में परिवर्तन लाना चाहती थी। इन दोनों विचारधाराओं में संघर्ष हुआ था। पहली विचारधारा धर्म मोक्ष आदि की बात कर इसमें किसी प्रकार की तब्दीली के खिलाफ थी तो दूसरी प्रगतिशील विचारधारा थी जिसका नेतृत्व घनश्यामदास बिड़ला जैसे लोग कर रहे थे। यह मामूली संघर्ष नहीं था। अपने प्रगतिशील विचारों के लिए बिड़ला परिवार का सामाजिक बहिष्कार किया गया। बिड़ला परिवार में स्वजाति विवाह हुआ पर उस जाति को हेय दृष्टि से देखा जाता था। पुराने विचारों के लोग मानते थे कि परिवारों को संस्कारों से अलग कर गलत रास्ते पर ले जाया जा रहा है। बिड़ला परिवार को वर्षों तक इस आधुनिक विचारधारा एवं मानवीय संवेदनाओं के लिए हुक्का-पानी, बेटी और रोटी के रिश्ते से वंचित होना पड़ा। कोई युवक विदेश जाता तो उसका विरोध होता और उस पर विदेश जाकर मांस खाने एवं शराब पीने का अभियोग लगाया जाता। विधवा विवाह करने वाले को दंडित किया जाता। पुरुष सत्ता को और अधिक मजबूत करने की चेष्टा की गई। पुराने विचार के लोग कन्या शिक्षा के विरूद्ध थे। खैर लंबा इतिहास है मैंने संक्षेप में उसकी रूपरेखा लिखी है।

आज समाज में कई बुराइयां हो गईं हैं। नारी शिक्षा के जबर्दस्त प्रसार ने शिक्षित लड़कियों पर तंज कसना शुरू कर दिया जाता है। दबी जबान से कहा जाता है कि जब से लड़कियां पढ़-लिख गईं हैं, परिवार में विश्रृंखलता पनप रही है। ये लोग वही हैं जो कन्या शिक्षा के खिलाफ थे।

अब आइए शराबखोरी पर। समाज में शराब पीने की प्रवृत्ति का विरोध नहीं हो रहा है। विरोध सिर्फ विवाह शादियों में भाराब परोसने का हो रहा है। हम बुराई की व्यापकता एवं जड़ों तक नहीं जाना चाहते हैं। मैं बहुत स्पष्ट हूं कि जब शराबखोरी का आलम बढ़रहा है -हम सिर्फ विवाह शादियों में इस प्रवृत्ति की खिलाफत करें यह ठीक वैसे ही है जैसे हमने दहेज का विरोध किया किंतु दहेज की प्रवृत्ति के पीछे धन की पिशाचता का कभी विरोध नहीं किया। परिणाम हुआ कि हमारी कितनी ही पीढ़ियां चलीं गईं, हम दहेज दानव का संहार नहीं कर पाए।

शहरों में कुछ विचारशील परिवार दहेज जैसी प्रवृत्तियों से मुक्त हुए हैं पर आम परिवारों में दहेज का लेन-देन बदस्तूर जारी है। हमने हाथी के कान को ही हाथी समझ लिया।

मैंने मारवाड़ी सम्मेलन एवं कई सामाजिक कर्मियों से बातचीत की। उन्होंने मुझसे पूछा - तो क्या आप शादियों में शराब का समर्थन करते हैं। मैंने समझाया कि जब तक आप इस प्रवृत्ति को खत्म नहीं करेंगे कुछ लोगों द्वारा शादी विवाह या सामाजिक आयोजनों में नशा परोसने को खत्म नहीं कर सकते।

और फिर आप क्या सोचते हैं कि इस प्रवृत्ति को सिर्फ भाषण देकर या बीच-बीच में अपने वक्तव्य छपवा कर खत्म करना चाहते हैं। समाज सुधार के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ता है। आज जिस समाज के भले के लिए कार्य कर रहे हैं, सबसे पहले आपको उसकी लांछना एवं विरोध का सामाना करना पड़ेगा। मीराबाई ने जब राजमहल के खिलाफ बगावत की एवं कृष्ण प्रेम में जोगन बन गई तो उसको जहर का प्याला भेजा गया। गांधी को उन्हीं के लोगों ने गोली मार दी। सुकरात अपने ही लोगों के हाथ मारे गए। जीसस क्राइस्ट को उन्हीं के लोगों ने फांसी दी। स्वामी दयानंद सरस्वती की जीवन लीला उनके ही कुछ अनुयायियों की वजह से खत्म हुई। आदि आदि अनेकानेक उदाहरण हैं जब समाज में परिवर्तन लाने वालों को खत्म कर दिया गया। फिर भी जिनको काम करना होता है, वे ठीक काम करके ही निकलते हैं। कबीरदास जी ने बड़ा ठीक लिखा है-

कबिरा खड़ा बाजार में लिए लकुटिया हाथ
जो घर फूंके आपनो चले हमारे साथ।

आक्सफोर्ड में भी बजा हिंदी के जुगाड़ का डंका

विश्वम्भर नेवर

आक्सफोर्ड की डिक्शनरी इंग्लिश भाषा का गजट है। आक्सफोर्ड शब्दकोश में शामिल होने का मतलब है कि उसे विश्व की सबसे बड़ी भाषा में एंट्री मिल गई। हाल ही में हिंदी के कई शब्दों को आक्सफोर्ड में शामिल कर लिया गया। इनमें सबसे दिलचस्प शब्द है जुगाड़। जुगाड़ या जुगाड़िया हमारे देश में सर्वव्यापी है और प्रायः भारतीय भाषा में इसने अपना स्थान बना लिया है। इसके पर्यायवाची कई शब्द है लेकिन जुगाड़ का जो मिजाज है, वह इसके किसी भी पर्याय में नहीं।

राजपाल के हिंदी शब्दकोश के अनुसार जुगाड़ का अर्थ है - आवश्यक साधन, वस्तु आदि को हाजिर करना, कठिन कार्य को सिद्ध करने की युक्ति। किंतु यह सब विश्लेषण है। जुगाड़ के टक्कर का दूसरा शब्द हिंदी में भी नहीं है। हमारे बंगाली मित्र भी जुगाड़ कहते हैं। इसके आसपास का शब्द व्यवस्था है किंतु इसमें भी जुगाड़ वाला सतही बोध नहीं है। खैर इंगलिश ने जुगाड़ का हाइजैक कर लिया और अंग्रेजी बोलने वालों को इस अक्षर में एक करिश्मा मिल गया जिसका पहले उनके जीवन में अभाव था। जुगाड़ टेक्नोलॉजी कहकर तो हम विज्ञान के सांचे में जुगाड़ को ढाल देते हैं। हिंदी के गलियारे से दो शब्द को निकालने के लिए भारतीय जनमानस में पैठ करनी पड़ी हुई होगी इंगलिश के पंडितों को।

इसके पहले भी हमारे कई शब्दों को आक्सफोर्ड ने अपने महा माया जाल में फांसा है। क्या लूट हमारे ही देश में ही होती है, पर उन्हें लूट शब्द देकर उनकी खुफिया एजेंसी को हिंदी ने आबाद कर दिया। लूट के साथ और भी कई शब्द हमारे पुराने आका लूटकर ले गए। हमारी औरतें पर्दानसीन हैं। वे ताक-झांक कर सकतीं हैं पर दूसरों को झांकने नहीं देतीं - इसी को पर्दा कहते हैं। आखिर इंगलिश वालों ने पर्दा को भी शामिल कर लिया। उनकी मजबूरी भी है क्योंकि ग्रेट ब्रिटेन चाहे कितना ही ग्रेट क्यों न हो वहां पर्दा वाली नहीं होती, सब बेपर्दा हैं।

इसी तरह ''अंग्रेजी'' शब्द इंगलिश में नहीं है। हिंदी में इंगलिश को अंग्रेजी का नाम देकर उसकी आक्सफोर्ड में भी एंट्री करवा दी। हमारी अंग्रेजी ने अब उनकी इंगलिश की जगह ले ली है।

आक्सफोर्ड शब्दकोश की संपादिका डेनिका सालाजार ने बताया कि हिंदी के लगभग एक हजार शब्द आक्सफोर्ड के उदर में समा चुके हैं। हमारे व्यंजन गुलाब जामुन, लड्डू, वड़ा पाव, फुचका अंग्रेजी शब्दकोश में ले लिए गए हैं। इन व्यंजनों को देखकर इंगलिशदाओं के मुंह में पानी आ गया होगा।

हिंदी में ''बाजार'' कई भारतीय भाषाओं में भी इसी नाम से जाना जाता है। इंगलिश में इसके लिए मार्केट शब्द लोकप्रिय है। हमारे यहां भी मार्केट शब्द का खूब प्रयोग होता है फिर भी इंगलिश के पंडितों ने बाजार और हाट को आक्सफोर्ड में शामिल कर मार्केट का एकाधिकार ध्वस्त कर दिया। फादर शब्द के साथ बापू को भी आक्सफोर्ड में समेट लिया गया है। ट्रैफिक जाम यहां भी होता है वहां भी। पर हमारे पुराने आकाओं को चक्का जाम भी अच्छा लगा और आक्सफोर्ड के पन्नों में उसे भी समेट लिया गया।

आप टाइमपास के लिए ताश खेलते होंगे। या और कोई फंडा होगा समय बिताने के लिए। तो लीजिए एक खुशखबरी आपका ''टाइमपास'' और ''फंडा'' ने इंगलिश सुर में सुर मिला लिया है। अब वे भी टाइमपास में हमारे सहयोगी होंगे और उनका यह फंडा भी आक्सफोर्ड के शब्दकोश में रंग लाएगा।

भिंडी को जब लेडी फिंगर कहा गया तो अंग्रेजी महिलाएं सहम गईं। इस लजीज सब्जी को हमारी उंगलियां ही क्यों भाई तो भिंडी को अंग्रेजी शब्दकोश में जगह देकर मेमसाहब की फिंगर को नई पहचान दी गई। इस तरह हिंदी के कई शब्दों को इंगलिश की आक्सफोर्ड डिक्शनरी में स्थान देकर भाषाओं की ''बड़ी बुआ'' ने अपने को शब्दों के जेवरात से आच्छादित कर लिया। हिंदी ने सहयोग का हाथ बढ़ाया और रानी ने चूम लिया। हिंदी सौभाग्यशाली है कि उसे भारतीय भाषाओं के शब्द मिले और अंग्रेजी से भी लेकर राष्ट्रभाषा ने अपने को और भी समृद्ध बनाया। उदारता से जीवन बड़ा होता है, संकीर्णता पतन की ओर ले जाती है।

हिंदी के चाहने वालों के लिए यह एक खुशखबरी है कि उसके शब्द विश्व विजय करने लगे हैं।

भिंडी को जब लेडी फिंगर कहा गया तो अंग्रेजी महिलाएं सहम गईं। इस लजीज सब्जी को हमारी उंगलियां ही क्यों भाई तो भिंडी को अंग्रेजी शब्दकोश में जगह देकर मेमसाहब की फिंगर को नई पहचान दी गई। इस तरह हिंदी के कई शब्दों को इंगलिश की आक्सफोर्ड डिक्शनरी में स्थान देकर भाषाओं की ''बड़ी बुआ'' ने अपने को शब्दों के जेवरात से आच्छादित कर लिया। हिंदी ने सहयोग का हाथ बढ़ाया और रानी ने चूम लिया। हिंदी सौभाग्यशाली है कि उसे भारतीय भाषाओं के शब्द मिले और अंग्रेजी से भी लेकर राष्ट्रभाषा ने अपने को और भी समृद्ध बनाया। उदारता से जीवन बड़ा होता है, संकीर्णता पतन की ओर ले जाती है।

परिजनों की दृष्टि में नेवर जी

वे सबकी सुनते हैं

विपीन नेवर

हम लोग परिवार में मां, पापा और तीन भाई-बहन हैं। बड़ी बहन विनीता विशाखापट्टणम में रहती है। मैं विपिन और मेरा छोटा भाई विक्रम सपरिवार एक साथ रहते हैं। हम पहले से ही संयुक्त परिवार में पले-बढ़े हैं। दादाजी के तीन पुत्र थे जिनमें बड़े पुत्र मुंबई चले गए। मेरे पिताजी व छोटे चाचाजी का परिवार साथ-साथ ही रहता है। हमने एक नया फ्लैट ले लिया है पर दोनों के मकान बिल्कुल पास-पास ही है तो आना-जाना लगा रहता है। पिताजी ने हमें बचपन से यही सिखाया है कि संयुक्त परिवार में सब साथ रहने में ही जीवन आसान हो जाता है। ये परिपाटी उन्होंने हममें बचपन से ही डाल दी है। खास बात यह है कि साथ रहते हुए उन्होंने यही बताया है कि एडजस्ट करो वो भी खुशी-खुशी। ऐसा नहीं कि मन मारकर किसी तरह साथ रह रहे हैं। नहीं उन्होंने यही सिखाया है कि खुशी से एडजस्ट करते हुए साथ रहना चाहिए।

शुरू से ही उनका बहुत सा समय सामाजिक कार्यों में चला जाता था पर हमें कभी ऐसा नहीं लगा कि वे बहुत व्यस्त हैं और हमें समय नहीं दे रहे हैं। हम सभी साथ रहते थे तो ताउजी और चाचाजी के बच्चे सभी साथ-साथ रहते थे और सभी से उनका बराबर स्नेह रहता था।

उन्होंने हमें बचपन से ही कहा कि अखबार पढ़ो। तो पठन-पाठन की ओर हमारी इच्छा बनी रही इसका उन्होंने हमेशा ध्यान रखा। तो इससे हमारी बुनियाद मजबूत हुई है। उन्होंने हमेशा यही कहा कि आप जो भी पढ़ते हो, सोचते हो उसे अभिव्यक्त करो। चाहे बोलकर या लिखकर तो हमारे परिवार में सभी बहुत शुद्ध भाषा बोल लेते हैं चाहे मेरे बच्चे हों या छोटे भाई के बच्चे हों। सभी के साथ आज भी वे यही कहते कि जो तुम सोच रहे हो उसे कैसे व्यक्त करोगे यह बताओ। मेरे छोटे भाई को छोटा बच्चा है जो बहुत अच्छी ड्राइंग कर लेता है तो यह भी अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। दूसरी बात हमारे परिवार में उन्होंने हमेशा सबको अपनी बात रखने की छूट भी दी है। घर में बहुओं को भी अपनी बात रखने की पूरी आजादी है। चाहे परिवार के भीतर हो या ऑफिस में वे बोलने की आजादी सबको देते हैं। यहां सबको प्रश्न करने का हक है। वे कभी भी किसी रिपोर्टर को या डेस्क पर कार्यरत व्यक्ति से यह नहीं कहते कि तुमने मुझसे प्रश्न क्यों किया। बल्कि उन्होंने सभी को स्वस्थ बहस की छूट हमेशा दी है। कभी भी किसी के मत को दबाने की कोशिश नहीं की।

आप देखिए 'ताजा' टी वी में उनका एक शो चल रहा है 'सागर मंथन' जिसके लगभग 1000 एपीसोड हो चुके हैं। कभी भी वह शो बंद नहीं हुआ। इस बीच उनका ऑपरेशन भी हुआ पर उन्होंने कभी शो की रेकॉर्डिंग नहीं रोकी। शुरू से अखबारनवीस रहे हैं तो वे हमेशा यही मानकर चलते हैं कि कल का अखबार तो निकलना ही है चाहे आंधी आए या तूफान। सागर मंथन में लोग उन्हें इसलिए पसंद करते हैं कि वे सभी वक्ता को बोलने का पूरा मौका देते देते और अंत में बखूबी उपसंहार कर देते हैं। तो जो आजादी वे परिवार में है वही आजादी यहां कार्यक्रम में भी वे वक्ताओं को देते हैं। वे अलग -अलग क्षेत्रों से वक्ताओं को आमंत्रित करते हैं तो उनके मन की बात को कैसे व्यक्त की जाए यह शैली उनमें कूट-कूट कर भरी है। कई बार हमने देखा है कि शो की रिकार्डिंग के बाद वक्ता स्वयं आश्चर्यचकित हो जाते हैं कि हम इतना इस विषय पर बोल सकते हैं, यह तो हमें ही पता नहीं था।

वे इतनी सारी संस्थाओं से जुड़े हुए हैं तो वे हमेशा यही मानते हैं कि सबको जोड़कर कैसे चला जाए। कोई भी कार्यक्रम हो वे परिवार के सभी सदस्यों को भी यदि संभव हो तो ले जाते हैं क्योंकि उनकी यही मान्यता है कि सबके साथ मिलना चाहिए।

यहां ऑफिस में सभी के साथ उनके सुंदर संबंध हैं। उनकी उम्र करीब 76 साल है जो सबसे कनिष्ठ कर्मचारी है वह शायद 22 साल का है, पर वे सभी के साथ समान रूप से मिलते हैं। सबके स्तर के मुताबिक जिम्मेदारी सौंपते हैं। जो लोग कभी हमारे यहां काम करते थे पर अभी छोड़कर चले गए है वे भी कभी कहीं पर मिल जाते हैं तो पूरे आदर के साथ उनसे बात करते हैं। क्योंकि नौकरी के बाहर भी उनके संबंध कभी भी टूटे नहीं।

मेरी मां का भी उन्हें हमेशा पूरा सपोर्ट मिला है। पहले तो वे काफी समय के लिए बाहर रहते थे, कई दिनों के लिए बाहर रहते थे तो हमारी मां ने कभी उनकी कमी महसूस नहीं होने दी।

सबसे बड़ी बात यह है कि वे जानते हैं कि किसमें क्या खूबी है और उसे कैसे उभारा जा सकता है। मां भी इसी क्रम में उनके रंग में ढल गई।

बचपन से हमने कभी ऐसा कोई उतार-चढ़ाव नहीं देखा जो हमारी स्मृति में विशेष बना हुआ हो, तो कहा जाता है कि उन्होंने कभी भी किसी बात को अचानक हमारे सामने नहीं रखी। हर दिन सुबह नाश्ते के समय हमारा पूरा परिवार एकसाथ मिलकर बैठता है जहां सभी अपनी बात रखते हैं। वे अपने अतीत की बातें बताते हैं वहीं हम अपने भविष्य की योजना भी तय कर लेते हैं। वे सबकी सुनते हैं और जो स्टॉक रहता है वह सुबह ही क्लियर हो जाता है, डाइनिंग टेबल से ही आप कह सकते हैं। स

(लेखक विश्वम्भर जी के सुपुत्र हैं)

नेवर जी से मिलते हुए.....

रेशमी पांडा मुखर्जी

कलकत्ता साहित्य की नगरी है, हिंदी पत्रकारिता की जन्मभूमि है, उत्सवपूर्ण महानगरी है। यहां बांग्ला के अलावा हिंदी के भी कई महत्वपूर्ण समाचार पत्र छपते व प्रसारित होते हैं। पांच-छह साल पहले 'अभिनव प्रसंगवश' पत्रिका के संपादक वेदप्रकाश अमिताभ जी से बातचीत के दौरान मुझे पता चला कि छपते-छपते का दीवाली विशेषांक निकल रहा है। यदि चाहूं तो कोई सामग्री उन्हें भेज सकती हूं। उनसे श्रीनिवास जी का फोन नंबर मिला। उनसे बात कर मैं क्रीक रो स्थित छपते-छपते के कार्यालय अपनी कविता उन्हें देने गई। एक तल्ले पर विशाल प्रेस स्थापित था जहां लोग काम कर रहे थे। उपर दो तल्ले पर ऑफिस था। जाकर विशेषांक के संपादक श्रीनिवास जी से मिली। तब उन्होंने बताया कि किसी और दिन भी आना जिस दिन मैं उस पत्र के मालिक विश्वंभर नेवर जी से तुम्हारा परिचय करा दूंगा। वृद्ध संपादक महोदय ने मेरी कविता ग्रहण की और कहा कि आज तुम्हारा बेटा भी साथ है तो आज तुम चली जाओ। किसी और दिन समय लेकर मुझे फोन करके आना।

कुछ दिनों बाद श्रीनिवास जी से समय लेकर कालेज से लौटते वक्त फिर उस कार्यालय में गई। उस दिन नेवर जी से मेरा पहला परिचय हुआ। गौर वर्ण, बलिष्ठ शरीर, श्वेत केश, मुख पर सौम्य हंसी के साथ अनुभवी गांभीर्य। बगल वाले केबिन में उनके सुपुत्र भी काम में लीन थे। परिचय के साथ ही नेवर जी ने बड़ी आत्मीयमा के साथ आसन ग्रहण करने को कहा। बैरे को बुलाकर पानी व चाय लाने को कहा। काफी देर तक वे मुझसे बतियाते रहे। मेरे परिवार, शिक्षा-दीक्षा के विषय में जानने के आग्रही थे। बड़ी विनम्रता से छपते छपते दैनिक की एक प्रति मुझे दी। मुझसे कहा कि हम हर रविवार साहित्यिक सामग्री छापते हैं। आप भी कुछ लिखकर भेजें तो बड़ा अच्छा होगा। बातों ही बातों में आपने यह भी कहा कि प्रत्येक शनिवार वे लोग ताजा टीवी के लिए 'सागर मंथन' नामक एक टी वी शो शूट करते हैं जिसमें साहित्यिक व सामाजिक विषयों पर परिचर्चा आयोजित करते हैं। मैं किसी रोज आपको भी आमंत्रित करूंगा।

उसके बाद कभी-कभी सागर मंथन कार्यक्रम के लिए आप आमंत्रित करते रहे। आपके आमंत्रण का अंदाज इतना आत्मीय है कि लाख व्यस्तता होने पर भी आप नेवर जी को मना नहीं कर सकते। वे विशय के अनुसार वक्ता चुनते हैं जो उस विषय में पारंगत हो। खास बात यह कि आप कोई निर्धारित स्क्रिप्ट पर न तो प्रश्न पूछते हैं न ही उत्तर अपेक्षित करते हैं। वक्त को कैमरे के सामने आने से पूर्व केवल विशय का ज्ञान होता है पर परिचर्चा के दौरान विषय को कैसे विकसित किया जाएगा यह तय नहीं रहता। और एक बात उनका कार्यक्रम इतनी सादगीपूर्ण होता कि कोई मेकअप या विशेष वेशभूषा के लिए नहीं कहा जाता। तब भी विचार-विमर्श इतना जीवंत व तथ्यपूर्ण होता कि एक घंटे का कार्यक्रम यों ही शूट कर लिया जाता है। पूरी विचार-गोष्ठी को नेवरजी संचालित करते हुए विषय के सभी पक्षों पर वक्ताओं के विचार जानते हैं। खास बात यह है कि वे उस विषय पर प्रकाश डालने के लिए अलग-अलग क्षेत्रों से वक्ताओं को आमंत्रित करते हैं जैसे शिक्षा, पत्रकारिता, केंद्र सरकार के विविध कार्यालय में नियुक्त अधिकारी, साहित्यकार, भाषाविद आदि। यह कार्यक्रम अपने आप में अनूठा होता है जिसका पूरा श्रेय नेवर जी की व्यवहार कुशलता व विषय के गंभीर अध्ययन पर निर्भर करता। 2017 के फरवरी माह में आपका फोन आया, पूछने पर पता चला कि श्रीनिवास जी की पुस्तक 'धुआ उगलती चिमनियां' का विमोचन करना है तथा पिछले तीस वर्षों से श्रीनिवास जी छपते-छपते का दीवाली विशेषांक संपादित कर रहे हैं तो उन्हें सम्मानित करने का कार्यक्रम आयोजित किया है। आपको शामिल होना ही है। कार्ड मंगवा लीजिएगा मेरे ऑफिस से। मैंने कौतूहलवश पूछा कि क्या बात है बिना कार्ड के शामिल होने की मनाही है। तो जवाब मिला कि कार्यक्रम राजभवन में आयोजित करवा रहा हूं। माननीय राज्यपाल महोदय श्री केसरीनाथ त्रिपाठी स्वयं श्रीनिवास जी को सम्मानित करेंगे। बहुत विशिष्ट अतिथियों को ही आमंत्रित किया है। आप जरूर आइएगा, अच्छा लगेगा। नेवरजी के आग्रहपूर्ण आमंत्रण को ठुकराना पूरे कोलकाता भाहर में शायद ही किसी के लिए संभव है। बहुत ही बढ़िया कार्यक्रम रहा। शहर के सभी अकादमिक क्षेत्रों से संबंधित अत्यंत महत्वपूर्ण विद्वजन से सभाकक्ष अभिमंडित था। इस पर आदरणीय राज्यपाल जी का वक्तव्य चिंतन की नवीन दिशाओं को प्रभासित करने में सक्षम रहा। पूरे कार्यक्रम में नेवरजी अपने पूरे परिवार के साथ अतिथियों की देख-रेख में तत्पर थे। राजभवन जैसे अत्यंत गुरूत्वपूर्ण प्रशासनिक जगह की नजाकत व महत्व का आपने पूरी तन्मयता व निष्ठा के साथ ख्याल रखा।

पार्क होटल में पूरी भव्यता के साथ नेवरजी ने प्रभा खेतान फांउडेशन के साथ मिलकर पुस्तक चर्चा के कार्यक्रम आयोजित किए। परिचर्चा कानाम था 'कलम'। प्रत्येक परिचर्चा के दौरान आपने शहर में मौजूद शिक्षा, कला, संस्कृति, साहित्य, पत्रकारिता आदि क्षेत्रों से जुड़े महत्वपूर्ण व्यक्तियों को दर्शक के रूप में आमंत्रित किया। कार्यक्रम का प्रसारण ताजा टीवी पर किया जाता। प्रवासी लेखिका पुष्पिता अवस्थी, कांग्रेस सांसद शशि थरूर आदि की पुस्तकों पर नेवर जी परिचर्चा आरंभ करते। आपके प्रश्न लेखक की दृष्टि व पुस्तक के प्रत्येक पक्ष को उघाड़ने में सफल रहते। इसी प्रकार आप दर्शकों को भी प्रश्न करने के लिए उत्साहित करते और पूरे कार्यक्रम को नियंत्रित करते हुए उसे रोचक व जानकारीमूलक बना देते।

शिक्षक दिवस के अवसर पर आप हर वर्ष सभी परिचित शिक्षकों को आमंत्रित करते और मारवाड़ी समुदाय के किसी शिक्षक को सम्मानित करते। आप अन्य शिक्षकों को भी मंच पर अपने वक्तव्य साझा करने के लिए आदरपूर्वक आमंत्रित करते। इसी प्रकार होली के अवसर पर आप सभी को आमंत्रित करते हुए होली मिलन के अनुष्ठान को सफल बनाते। बहुत अच्छा लगता है आपके किसी भी कार्यक्रम में शामिल होना क्योंकि साहित्य, शिक्षा, संस्कृति व सामाजिक विषय से आपका जुड़ाव निश्चित रूप से प्रेरक व अनुकरणीय बन जाता। हर कार्यक्रम में भाहर के विभिन्न प्रांत में कार्यरत साहित्य, कला, संगीत, शिक्षा व ज्ञान की विविध शाखाओं से जुड़े महत्वपूर्ण व्यक्तियों का एक जमावड़ा सा लग जाता जो बातचीत के माध्यम से विचार विनिमय का एक स्वस्थ व उर्जावान मंच बन जाता। विशेष आकर्षण है आपके स्वभाव का जो अत्यंत नम्र व प्रभावशाली है। किसी कार्यक्रम में यदि न जा पाएं तो आप कभी भी बुरा नहीं मानते बल्कि अगले कार्यक्रम में फिर उसी उत्साह व आदर के साथ आमंत्रित करते। कभी भी आपके कार्यालय में मिलने के लिए आपसे फोन पर बात होती तो आप पूरे सम्मान और आग्रह के साथ मिलने का समय देते। आपकी बातचीत हमेशा समाज व जीवन के कई क्षेत्रों से जुड़े विषयों को अनायास ही जोड़ देते। बात करते-करते कैसे समय बीत जाता पता ही नहीं चलता। लाख व्यस्त होने पर भी आप आगांतुक के स्वागत में हमेशा तत्पर रहते। आपके मिलनसार व्यक्तित्व के कारण आपके केबिन में हमेशा मिलने वालों का जमघट बना रहता है। हमेशा शिक्षक को, अध्येता को, विशेषज्ञ को आपके पास उचित सम्मान मिलता है। सबसे सुंदर यही लगता है कि केबिन में प्रवेश करने के साथ-साथ आप बैरे को पानी व चाय लाने का आदेश देते और अपने हाथ से अपने दैनिक अखबार 'छपते-छपते' की एक प्रति आगांतुक को देते। एक सच्चा पत्रकार, दिल से और स्वभाव से भी। प्रभावित हुई आपके आकर्शक व्यक्तित्व से और हमेशा चाहूंगी कि सामाजिक स्खलन के इस दौर में आप जैसा सजग व कर्तव्यनिष्ठ पत्रकार तथा सामाजिक उन्नयन के प्रति जागरूक नागरिक हम सबके बीच अपनी कर्मनिष्ठा के बल पर अनुकरणीय उदाहरण बना रहे। स

साक्षात्कार

पत्रकारिता समाज सेवा का सबसे बढ़िया माध्यम है

(ख्यात पत्रकार एवं संपादक श्री विश्वंभर नेवर जी से रेशमी पांडा मुखर्जी की बातचीत)

रेशमी पांडा मुखर्जी : आप अपने बचपन के विषय में कुछ बताइए।

नेवर जी : मेरे बचपन के दो हिस्से हैं। कुछ हिस्सा तो राजस्थान में बीता और कुछ हिस्सा यहां कलकत्ता में गुजरा। मैं शैशव काल में ही कलकत्ते आ गया था। मैं जब कलकत्ता आया तब मैं आठ वर्ष का था। इससे पहले मैं राजस्थान में था। राजस्थान की कुछ बातें मुझे याद हैं क्योंकि मनुष्य जहां पैदा होता है वहां का उस पर बड़ा प्रभाव होता है। दूसरी बात, जब भी कलकत्ता में स्कूल में पढ़ते समय गर्मियों की छुट्टियां लगती थीं तो हम राजस्थान चले जाते थे। इसलिए राजस्थान का बचपन हमेशा मेरे मन में ताजा है। यहां का बचपन स्कूल में पढ़ते-लिखते बीता। वहां गांव का जीवन था और यहां शहरी वातावरण था।

तो इन दोनों में क्या अंतर था?

बचपन की एक स्मृति मुझे आज भी गुदगुदाती है। जब हम यहां कलकत्ता स्थित चितपुर वाले मकान में रहते थे तब मैं देखता था कि सुबह रोज होस पाइप से सड़कों को धोया जाता था। मुझे भारी आश्चर्य होता था कि जहां राजस्थान में पानी की इतनी तंगी थी। हमें नहाने के लिए पानी नहीं मिलता था वहां कलकत्ता में सड़कों को भी नहलाया जाता है। मैं बड़े आश्चर्य से घंटों यह माजरा देखता था। और जिस मकान में हम लोग रहते थे उसके नीचे एक कुंड भी था। मैं तो घंटों उसमें नहाता था। बचपन के आठ-नौ साल जो राजस्थान में पानी की तंगी में बीते थे वह कमी मैंने कलकत्ता आकर पूरी कर ली। नहाने की सारी कसर निकाल ली।

कालेज की पूरी पढ़ाई मैंने कलकत्ता में ही की। मुझे मेरे पिताजी यहां लाए ही थे कि मैं आदमी बन सकूं। कारण यह है कि उस समय राजस्थान के गांव में पढ़ाई के प्रति लोगों की कोई खास रूचि नहीं थी। शिक्षा के प्रति आग्रह के कारण हम यहां पर आए। राजस्थान में उस समय लोग बड़े मकानों में रहते थे। उनमें आगे बढ़ने की वह इच्छा नहीं थी पर यहां वे लोग आए जो उद्यमी थे। यहां लोग सुबह से लेकर शाम तक काम करते थे। यहां पर स्वयं को स्थापित करने के कई मौके थे जिनका मैंने पूरा उपयोग किया। मैं कह सकता हूं कि मेरे व्यक्तित्व को पूर्णता बंगाल से ही मिली।

पत्रकारिता के प्रति आपकी रूचि कैसे जाग्रत हुई?

पत्रकारिता के प्रति रूचि का कारण था मेरी पढ़ाई -लिखाई के प्रति रूचि। मुझे याद है कि मेरे बचपन में 'दैनिक विश्वामित्र' में बच्चों का पन्ना निकलता था। मैं धर्मतल्ला स्थित उनके कार्यालय पांच-छह किलोमीटर पैदल चलकर अपनी रचना देने आता था। कभी छोटी कहानी, चुटकुला या कविता प्रकाशित होती थी। जिस सुबह मेरी रचना प्रकाशित होने वाली होती उसकी पहली रात मुझे नींद नहीं आती थी। कब सुबह होगी कब मैं अपनी रचना पढ़ूंगा यह उत्सुकता बनी रहती थी।

बाद में जब मैं थोड़ा बड़ा हुआ तो मैंने देखा कि जो समाचार-पत्र का संपादक होता है वह तो समाज का सबसे बड़ा आदमी होता है। सारे लोग उसके इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं। उसकी समाज में बड़ी प्रतिष्ठा होती है। अतः मैंने देखा कि इस कार्य में प्रतिष्ठा भी है, गौरव भी है तो इसके प्रति मैं आकर्षित हुआ। दूसरा कारण यह भी है कि हमारा कोई पुश्तैनी व्यापार नहीं था। मेरे पिताजी पाट के सौदागर थे। पाट के व्यापार में कोई वास्तविक लेन-देन नहीं होती थी, वह एक प्रकार का सट्टा होता है। मनों के हिसाब से सौदे होते थे और उसमें फायदा या नुकसान होता था। खैर अब तो वह व्यवसाय बंद हो गया है। लेकिन तब वह व्यापार चलता था जिसमें मेरे पिताजी लगे हुए थ। कोई भी पारिवारिक कारोबार न होने के कारण मेरे पास आजादी थी कि मैं अपनी इच्छा से काम शुरू कर सकूं।

बंगाल में काम करते समय आपको कौन सी समस्याओं का सामना करना पड़ा?

देखिए बंगाल में हमने यही पाया कि यहां पहले से ही शिक्षा का स्तर बहुत ही उन्नत रहा। यहां के लोग चाहे कालेज की पढ़ाई में हो या पत्रकारिता में, भाषा व शिक्षा की दृष्टि से बहुत आगे थे। हम लोग उनसे पिछड़ जाते थे। समाचार पढ़ने के मामले में बंगाली हमसे आगे रहते। वे समाचार-पत्र को घोंटकर पढ़लेते। केवल हेडलाइन पढ़कर छोड़ नहीं देते। शिक्षा में भी हम देखते कि कालेज में हमारे बंगाली सहपाठी हमसे बहुत होशियार होते। वे गहन अध्ययन करते हैं, तार्किक होते हैं। आप देखिए आनंदबाजार पत्रिका के दैनिक लगभग दस लाख पाठक हैं जो किसी भी हिंदी दैनिक के नहीं हैं। तो बंगालियों से शिक्षा के स्तर पर मुकाबला करना हमारे लिए कठिन था।

बंगाल में खड़े होकर आज आप राजस्थान को कैसे देखते हैं?

सच बात तो यह है कि अब राजस्थान से हमारा वैसा संबंध रहा नहीं। अब हम पर्यटक के रूप में ही वहां जाते हैं। हमारी अपनी जगह तो हमसे छूट चुकी है। यद्यपि राजस्थान के चप्पे-चप्पे में पर्यटन है। तो आप भी राजस्थान जाकर वहां की धरोहर को जैसे देखते हैं हम भी वैसे ही देखते हैं। हम यहां आ गए, यहां पर पले-बढ़े, यहां पर हमें रोजी-रोटी मिली तो इस बंगाल की धरती का तो हम पर ऋण है।

आप दीर्घ समय से कलकत्ता में बसे राजस्थानी मारवाड़ी समाज के लिए काम कर रहे हैं, इसके विषय में हमें कुछ जानकारी दीजिए।

हम जब यहां पर आए तो जीवन के लंबे समय में विभिन्न क्षेत्रों से जुड़कर हमने यह अनुभव किया कि राजस्थानी उद्यमी है, परिश्रमी है पर शिक्षा की दृष्टि से बंगाली समाज से पिछड़ा हुआ है। उसमें कुछ कमजोरियां हैं जो उसे पिछड़ा बनाए हुई है। मैंने कोशिश की इन विषमताओं को दूर किया जा सके ताकि राजस्थानी समाज भी शिक्षा-संस्कृति व साहित्य के क्षेत्र में आगे बढ़सके। मैं कई संगठनों के माध्यम से काम करता हूं क्योंकि अकेला व्यकित तो इस प्रकार के बड़े आयोजन नहीं कर पाएगा।

हम ऐसे विद्यार्थियों को पुरस्कृत करते हैं जिन्हें बोर्ड की परीक्षाओं में नब्बे प्रतिशत से अधिक अंक मिले हैं। पहले हम केवल राजस्थानी बच्चों को पुरस्कृत करते थे पर अब तो गैर राजस्थानी बच्चों को भी पुरस्कार देते हैं। इसका कारण है कि शिक्षा के क्षेत्र में राजस्थानी बच्चे आगे बढ़े। अब आप देखिए राज्य की किसी भी महत्वपूर्ण परीक्षा में प्रथम दस में दो-एक हिंदी भाषी छात्र होता है।

इसी प्रकार हम शिक्षक दिवस के अवसर पर शिक्षा के क्षेत्र में गौरवपूर्ण ढंग से कार्यरत किसी राजस्थानी शिक्षक को पुरस्कृत करते हैं। क्योंकि देखिए जो मारवाड़ी बंगाल में आए वे व्यापार के उद्देश्य से आए। राजस्थानी कारोबारी लोग होते हैं, पैसा कमाना उनका उद्देश्य होता है। ऐसे में यदि किसी राजस्थानी परिवार का व्यक्ति शिक्षक बनता है तो हमारे लिए बड़े गर्व का विषय होता है। हम सभी शिक्षकों को आमंत्रित करते हैं पर किसी राजस्थानी शिक्षक को पुरस्कृत करते हैं, सम्मानित करते हैं। लक्ष्य यही है कि शिक्षा के क्षेत्र में बंगाल में बसे राजस्थानी आगे आए।

इसी प्रकर के एक कार्यक्रम के माध्यम से हम सामाजिक क्षेत्र में राजस्थानी समाज को कुरीतियों से मुक्त करने का प्रयास करते हैं। हमारा राजस्थानी समाज व्यापारी समाज है, इसमें पैसा बहुत है। पैसे के साथ कुरीतियां भी समाज में प्रवेश कर जाती हैं। हमने कोशिश की कि राजस्थानी समाज में कुछ ऐसे उपाय किए जाएं जिससे इन कुरीतियों को दूर किया जा सके। हमारे यहां भादियों में बहुत फिजुलखर्ची होती है। बचपन में मुझे याद है कि मैं शादी-विवाह में जाकर फिजुलखर्ची के खिलाफ प्रदर्शन करता था। अब हम हर साल छात्र-छात्राओं में 'समाज में कुरीतियां : कारण और निवारण' विषय पर निबंध प्रतियोगिता आयोजित करते हैं जिससे छात्र जीवन से ही वे इन कुरीतियों के कारणों को समझे और उन्हें दूर करने के उपाय निकाले। हम इस प्रतियोगिता में बेहतरीन प्रदर्शन करने वाले बच्चों को पुरस्कृत करते हैं। हर साल इसमें चार-पांच सौ विद्यार्थी भाग लेते हैं। हर स्कूल में इसका प्रचार किया जाता है। हमारा यही उद्देश है कि विद्यार्थियों में इन कुरीतियों के विषय में जागरूकता बढ़े। और आज हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि छात्र वर्ग में जो जागरूकता आई है उसमें छोटा सा योगदान हमारा भी है।

इसी प्रकार हम होली व दीवाली के अवसर पर मिलनोत्सव आयोजित करते हैं। इन सामाजिक उत्सवों का बड़ा महत् प्रभाव होता है। देखिए मारवाड़ी समाज में पीढ़ियों से अर्थात राजस्थान से ही इस प्रकार के मिलनोत्सव में भाग लेने में की परंपरा है। राजस्थान से बंगाल में आने के बाद में इसका महत्व और बढ़गया है। पहले कलकत्ता में हम अधिकतर बड़ा बाजार इलाके में रहते थे। पर धीरे-धीरे हम फैलते गए। अब कोई बालीगंज तो कोई टालीगंज, कोई फूलबागान तो कोई हावड़ा में रहता है। ऐसे में समाज का होली जैसे पावन उत्सव पर मिलना बहुत जरूरी हो जाता है। हम केवल सबको सम्मिलित ही नहीं करते बल्कि समाज के किसी प्रतिष्ठित वरिष्ठ व्यक्ति को मंच पर आमंत्रित कर उनके विचार व अनुभव बताने का आग्रह करते हैं, उनसे मार्गदर्शन लेते हैं।

दुर्गापूजा के अवसर पर सप्तमी, अष्टमी, नवमी पर हम डांडिया उत्सव रखते हैं। यह डांडिया उत्सव हम नेताजी इंडोर स्टेडियम में आयोजित करते हैं। पिछले

दस-बारह वर्ष से हम यह उत्सव आयोजित कर रहे हैं। यह उत्सव अपने आप में अनूठा है। यह इतना लोकप्रिय हो चुका है कि उतने बड़े स्टेडियम में पांव रखने की जगह नहीं होती। वहां परिवार के सभी सदस्य, स्त्री-पुरूष भाग लेते हैं। यहां तक कि परिवार की चार-चार पीढ़ियां इसमें भाग लेती हैं। कारण यही है कि आज हमारे समाज में परिवार टूटते जा रहे हैं। मैं व्यक्तिगत रूप से परिवार की इकाई को बड़ा महत्व देता हूं। मैं मानता हूं कि परिवार के सदस्य यदि अलग रहें तब भी उन्हें मुसीबत के समय एक-दूसरे के पास होना चाहिए। एक-दूसरे का दुख साझा करना चाहिए।
इसी प्रकार हर साल दिसंबर में हम रॉयल राजस्थान नामक एक बड़ा सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करते हैं। इस कार्यक्रम में हम राजस्थान की झांकी प्रस्तुत करते हैं। राजस्थान की जो सांस्कृतिक धरोहर है, वह हम यहां के लोगों को दिखाते हैं। देखिए राजस्थान की संस्कृति बड़ी उर्जावान है, बलशाली है। हम उसे यहां पर प्रदर्शित करते हैं। राजस्थानी पर्व, लोकगीत, लोक नृत्य, वेश-भूषा, खान-पान से संबंधित प्रदर्शनियां लगाईं जाती हैं। हम ताजा टी वी व राजस्थानी सांस्कृतिक मंच की ओर से यह कार्यक्रम आयोजित करते हैं। इस कार्यक्रम का एक बड़ा आकर्षण होता है राजस्थानी भोजन जिसे हम चौखी ढांडी कहते हैं। उसमें विशुद्ध रूप से राजस्थानी खाना, साग-सब्जी व हर प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन मिलते हैं। लोग इन्हें खाना बहुत पसंद करते हैं, बडे आनंदित होते हैं। इस प्रकार हम राजस्थानी विरासत को और अधिक प्रसारित करने का प्रयास करते हैं।

वर्तमान समय में आप प्रेस की स्वाधीनता के विषय में क्या मत रखते हैं?

प्रेस की स्वाधीनता बहुत जरूरी है क्योंकि प्रेस लोकतंत्र का चौथा स्तंभ है। लोकतंत्र को बनाए रखनेके लिए, उसकी मजबूती को बनाए रखने के लिए प्रेस की आजादी बनी रहनी चाहिए। मैंने वर्षों से यही अनुभव किया है कि जो सत्ताधीन सरकार होती है वह प्रेस के विरूद्ध होती है क्योंकि उसके मन में यह भय बना रहता है कि प्रेस उसके विरूद्ध कोई खबर न छापे जबकि विरोधी दल प्रेस के साथ होते हैं क्योंकि वे प्रेस को अपने विचार के प्रचार का मजबूत मंच मानते हैं। ऐसे में प्रेस को इन परिस्थितियों में संतुलन बनाए रखना पड़ता है।
दूसरी ओर मैं यह भी मानता हूं कि प्रेस की आजादी को सुरक्षित रखने के लिए यह जरूरी है कि हम फेक न्यूज न छापे। जो भी खबर छापे उसकी प्रामाणिकता हमें हमेशा जांच लेनी चाहिए। कभी भी अवफाहों को हवा नहीं देनी चाहिए। मैं लंबे समय तक प्रेस काउंसिल का सदस्य रहा हूं। मैंने हमेशा चिट फंड कंपनियों द्वारा चलाए गए अखबारों का विरोध किया है। आप स्वयं सोचिए कि चिट फंड कंपनियों के क्या आदर्श व उद्देश्य होते हैं। वे यदि प्रेस चलाएंगे तो उनका लक्ष्य क्या होगा? केवल मुनाफा कमाना जिनका लक्ष्य होता है वे समाज हित के बारे में कैसे सोच सकते हैं?
प्रेस की स्वाधीनता के विषय में मैं एक और बात मानता हूं कि पहले जमाने में हिंदुस्तान टाइम्स हो, टाइम्स ऑफ इंडिया हो, इनके मालिक उद्योगपति घरानों से ताल्लुक रखते थे पर जहां तक प्रेस के अंदरूनी मामले हैं वहां संपादन विभाग का निर्णय ही अंतिम माना जाता था। प्रेस की स्वाधीनता संबंधी किसी भी मामले में वे दखल नहीं देते थे। आप कह सकते हैं कि खुशवंत सिंह लंबे समय तक लिखते रहे, बड़ा खुलकर लिखते थे पर कोई उन्हें टोकता नहीं था। पर अब वह बात नहीं रही। अब मालिक पक्ष संपादन के मामले में भी दखलंदाजी करता है।

आपके यहां 'ताजा टी वी' व 'छपते-छपते' नामक समाचार-पत्र दोनों चलता है। आप इन दोनों में से किसे अधिक चुनौतीपूर्ण मानते हैं?

मैं मानता हूं कि अखबार टी वी से अधिक चुनौतीपूर्ण होता है। देखिए टी वी पर जब समाचार पढ़ा जाता है तो आज भी लोग यह देखते हैं कि प्रस्तुतकर्ता कैसे बोल रहा है। बजाय इसके कि वह जो बोल रहा है उसमें समाचार तत्व कितना है? एंकर के लहजे, समाचार प्रस्तुतीकरण की तरफ दर्शकों का ज्यादा ध्यान रहता है। जबकि अखबार में समाचार, खेल, संपादकीय, साहित्य, विविध स्तंभ, कला, संस्कृति सभी का संगम रहता है। मानो दुनिया आपकी मुट्ठी में हो। सोलह या बीस पन्नों के अखबार में वह पूर्णता होती है जो टी वी के समाचार में नहीं होती। वहां समाचार टुकड़ों में बंट जाता है।

दूसरी बात मैं यह भी मानता हूं कि प्रिंट मीडिया का, छपे हुए शब्द का प्रभाव लोगों के दिमाग पर अधिक होता है। छपे हुए शब्द की महत्ता अधिक होती है। निस्संदेह टी वी की पहुंच समाचार पत्रों से वर्तमान समय में अधिक है। पर अखबार के पाठक पर उसका प्रभाव दीर्घकालीन होता है। हम जब कोई कहानी पढ़ते हैं तो उसका प्रभाव सुनी हुई कहानी से ज्यादा होता है। कई बार कोई घटना पढ़कर व्यक्ति का जीवन परिवर्तित हो जाता है।
एक बात और कि हिंदी समाचार चैनलों का प्रभाव मैं मानता हूं अंग्रेजी की तुलना में कहीं अधिक है। हिंदी के पास एक से एक बेहतरीन एंकर हैं।

आप बंगाल की सांस्कृतिक समरसता के विषय में क्या कहेंगे?

देखिए भारत के हर प्रांत में सांस्कृतिक समरसता है। लोग यहां से वहां आते-जाते हैं, बसते हैं। अपने साथ अपनी संस्कृति को भी ले जाते हैं। वहां से कुछ नया अपनाते हैं। यह तो सदियों से चलता आया है। जहां तक बंगाल में राजस्थान से आए लागों का प्रश्न है तो मैं यही मानता हूं कि राजस्थान के लोग विषम परिस्थितियों में बड़े होते हैं। वहां गर्मी और सर्दी जमकर पड़ती है। लोगों का शरीर मजबूत होता है। वहां रेत से जीवन को जूझना पड़ता है। एक घड़े पानी के लिए मीलों चलना पड़ता है। दूसरी ओर बंगाल में न ज्यादा गर्मी पड़ती है और न ज्यादा ठंड। पानी तो यहां घर के नीचे ही मिल जाता है। तो यहां के लोगों का शरीर उतना कठोर नहीं होता। वे साहित्य, कला, संस्कृति में आगे होने के बावजूद उतने उद्यमी नहीं होते। राजस्थानी यहां रोजगार के लिए आए। अपने व्यवसाय को स्थापित करने में राजस्थानी समाज को लगभग तीन पीढ़ियों का समय लगा। ८०-९० साल से लोग यहां कारोबार में लगे हुए हैं। पहले पुरुष यहां अकेले आते थे, साल में दो-एक बार अपने घर राजस्थान जाते थे। पर अब ऐसा नहीं है। पूरे का पूरा परिवार ही बंगाल में आकर बस गया है। यहां की मिट्टी, यहां की संस्कृति, खान-पान, वेश-भूषा में रच-बस गए। यही सांस्कृतिक समरसता है। अब तो हम राजस्थान किसी तीज-त्याहार या शादी-ब्याह में ही जाते हैं। अन्यथा हमारा सबकुछ तो यहीं है।

आपका परिवार भी आपके साथ आपके काम में लगा हुआ है। आपको उनसे कैसा सहयोग मिलता है?

जी मेरे दोनों बेटे अब इस कारोबार में आ गए हैं। मैंने उनसे यही कहा कि बड़ी मेहनत से मैंने यह काम शुरू किया है तो तुम लोग इसमें नहीं आओगे तो सब बेकार हो जाएगा। उन लोगों ने इस बात को समझा और वे इस काम में आ गए। उन्होंने देखा कि प्रेस के काम में आजीविका अच्छी है, प्रतिष्ठा है और समाज के लिए कुछ काम भी कर सकते हैं।
उन्हें अलग-अलग जिम्मेदारी सौंप दी गई है। ताजा टी वी का पूरा काम वे ही देखते हैं। टी वी तकनीकी मामला है। मुझे उसका बहुत ज्ञान नहीं है। टी वी प्रसारण से संबंधी विभिन्न सम्मेलनों में वे जाते हैं, नया जानते हैं, सीखते हैं। सिंगापुर वगैरह में तो अन्तर्राष्ट्रीय मेले होते हैं वहां वे भाग लेते हैं। अमरीका सरकार की तरफ से मेरे एक बेटे को मीडिया से संबंधित एक कोर्स में आमंत्रित किया गया था। जहां उसने जाकर बाकायदा पढ़ाई की, नई जानकारियां हासिल कीं। हमारी बड़ी बहू भी ताजा टी वी पर आधी दुनिया नामक महिलाओं से संबंधित एक सेग्मेंट की पूरी जिम्मेदारी संभालतीं है। आपने देखा होगा कि पहले मैंने जिन सांस्कृतिक कार्यक्रमों के बारे में बताया उनमें मेरे परिवार के सभी सदस्य अलग-अलग जिम्मेदारी निभाते हैं। छोटी बहू के बच्चे छोटे हैं इसलिए अभी वह घर संभालती है। बच्चे थोड़े बड़े हो जाएं, तब उसकी यदि रूचि हो तो हम उसे भी किसी जिम्मेदारी से जोड़ देंगे।

ताजा टीवी की अन्य चैनलों से कैसी प्रतिस्पर्धा है?

सौभाग्य से बंगाल में ताजा टी वी हिंदी का एकमात्र लोकल चैनल है। यहां हिंदी का दूसरा कोई स्थानीय चैनल नहीं है इसलिए प्रतिस्पर्धा का कोई मामला ही नहीं है। बंगाल, बिहार, झारखंड में हमारा चैनल बहुत पसंद किया जाता है। इन तीनों राज्यों के स्थानीय समाचार हम प्रस्तुत करते हैं। देखिए राष्ट्रीय चैनल तो बहुत से हैं लेकिन आजकल जनता स्थानीय समाचार जानने की अधिक आग्रही हैं। आपके आसपास क्या घट रहा है, आपकी राज्य सरकार किन नीतियों को अपना रही है, यह सब विशद रूप से स्थानीय चैनल के माध्यम से ही जनता जान पाती है।

आप इन तीनों राज्यों से अपने चैनल को और आगे बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं?

देखिए हम मारवाड़ी समाज से हैं। हम जानते हैं कि व्यवसाय को कितना और कैसे बढ़ाया जाए। ये गुण आप कह सकती हैं हममें जन्मजात है। चैनल चलाने के लिए विज्ञापन जरूरी है। आपको कितने विज्ञापन मिलते हैं उस हिसाब से आपके खर्चे नियंत्रित होने चाहिए। नहीं तो कितने ही चैनल आए और बंद भी हो गए। हम सीमित दायरे में अच्छा काम करना चाहते हैं। वैसे यह चैनल सैटेलाइट पर है अतः देश के किसी भी कोने में व्यक्ति इसे देख सकता है।

जनसंचार माध्यम से आप समाज की सेवा कैसे करते हैं?

मैं मानता हूं पत्रकारिता जन सेवा का सबसे अच्छा माध्यम है। इसके माध्यम से हम कुरीतियों पर, विसंगतियों पर वार कर सकते हैं। दूसरी ओर अच्छे लोगों, लेखकों, साहित्यकारों, कलाकारों को बढ़ावा दे सकते हैं। देखिए पत्रकारिता में व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता। हम जितने ज्यादा लोगों से जुड़ेंगे, जितना ज्यादा छापेंगे उतना हमारा सर्कुलेशन बढ़ेगा। समाज के लिए सबसे अच्छा काम हम पत्रकारिता के माध्यम से ही कर सकते हैं।

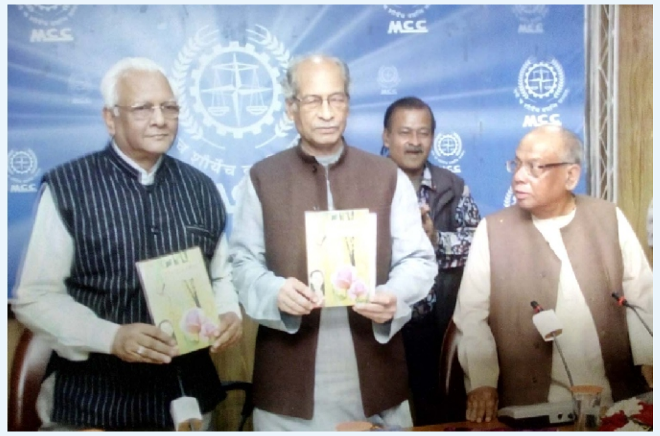

प्रेस में लंबे समय से काम करते हुए ऐसी कोई स्मृति जो आप हमसे साझा करना चाहेंगे।

जब मैं पत्रकारिता के क्षेत्र में आया तो लोग इसे बहुत अच्छी निगाह से नहीं देखते थे।

लोग पत्रकारिता को ब्लैकमेलिंग का जरिया मानते थे। मेरे बारे में भी लोगों की यही धारणा थी कि एक और नया ब्लैकमेलर पैदा हो गया। मुझे इन बातों से बड़ी तकलीफ होती थी। पर मैंने अपने करियर में पत्रकारिता को कभी ब्लैकमेलिंग का जरिया नहीं बनाया। मैंने कभी किसी की कमजोरी को छापकर या गलत खबर प्रकाशित कर अपने समाचारपत्र को आगे नहीं बढ़ाया। यहां तक कि मेरा कोई विरोधी भी मेरे बारे में ऐसा नहीं कह सकता। मैंने हमेशा पत्रकारिता के सिद्धांतों का, उसकी नीतियों का पालन करते हुए काम किया। ऐसा करने में मुझे समय लगा, मेहनत करनी पड़ी पर अंततः सफल रहा।

वर्तमान पीढ़ी पत्रकारिता को कैसे ले रही है?

पत्रकारिता में वर्तमान समय में अनेक नए लड़के आ रहे हैं पर उनमें वह गुणवत्ता नहीं है जो अपेक्षित है। यद्यपि वे कई तकनीकी कोर्स सीखकर आ रहे हैं पर भाषा पर उनका वह दबदबा नहीं है। भाषा की दृष्टि से बहुत कमजोर है। कोई भी वाक्य बोलेंगे तो उसमें आधी हिंदी तो आधी अंग्रेजी के शब्द होते हैं। देखिए मैं अंग्रेजी का विरोधी नहीं हूं परंतु जब आप हिंदी बोलें तो हिंदी के ही अधिक शब्द वाक्य में हों। वैसे आप ऐसे अंग्रेजी के शब्दों का जरूर इस्तेमाल कर सकते हैं जो भाषा में बहुत प्रचलित हैं पर भाषा में मिलावट को मैं वक्ता की कमजोरी मानता हूं। दूसरी बात यह कि आज अखबार के क्षेत्र में आने वाली नई पीढ़ी में निष्ठा का अभाव देख रहा हूं। कई ऐसे पत्रकार हैं जो सुबह का अखबार तक नहीं पढ़ते। यह बहुत चिंताजनक स्थिति है।

आपके साहित्यिक अवदान के विषय में बताएं।

देखिए मैं आपको बता दूं कि मैं पत्रकार हूं, साहित्यकार नहीं यद्यपि पत्रकारिता को मैं साहित्य का एक भाग मानता हूं पर मैं शुद्ध रूप से साहित्यकार नहीं हूं। साहित्यकार को अच्छा भाषाविद होना चाहिए, उसे अच्छे शब्दों के सही प्रयोग का ज्ञान होना चाहिए। साहित्य मेरा क्षेत्र कभी भी नहीं रहा। मैं साहित्यकारों का सम्मान करता हूं। साहित्यिक गोष्ठियों में जाता हूं, परिचर्चाओं में भाग लेता हूं पर मैंने कभी स्वयं को साहित्यकार नहीं कहा। किसी ने मुझे साहित्यकार कहा तो मैंने उसका खंडन किया है। मैं किसी अन्य के क्षेत्र में अनाधिकार प्रवेश नहीं करता।

हां, साहित्य में मेरी रूचि रही है इसलिए मैंने साहित्यिक कार्यक्रम हमेशा से आयोजित किए हैं। जैसे प्रभा खेतान फाउंडेशन द्वारा 'कलम' नामक एक कार्यक्रम चलाया जाता था। उनके अनुरोध पर हमने ताजा टीवी के माध्यम से उस कार्यक्रम में सहभागिता की। हम किसी अच्छे लेखक की एक सद्यः प्रकाशित पुस्तक पर परिचर्चा आयोजित करते थे। पहले मैं लेखक से उस किताब पर चर्चा करता फिर हम अपने दर्शकों को प्रश्न करने के लिए आमंत्रित करते थे।

इसी प्रकार हम पिछले 30-32 सालों से छपते-छपते का दीवाली विशेषांक निकाल रहे हैं। पहले पाठकों की यह शिकायत रहती थी कि समाचार पत्रों में साहित्यिक सामग्री का अभाव रहता है। मैंने इसी शिकायत को दूर करने की चेष्टा की। सौभाग्य से उन दिनों मेरे कार्यालय के पास समालोचक श्रीनिवास शर्मा जी का पंजाब नेशनल बैंक का कार्यालय था। वे अक्सर हमारे यहां आते रहते थे। मैंने उनसे अनुरोध किया कि एक दीवाली विशेषांक हम हर साल निकालेंगे और आपको इसके संपादन का दायित्व लेना होगा। वे राजी हो गए और तब से हमारा दीवाली विशेषांक हर साल निकल रहा है। और मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि संपूर्ण भारत में इतने लंबे समय से इस प्रकार का विशेषांक शायद ही निकल रहा हो। उसमें बड़े उन्नत मान की साहित्यिक सामग्री हम छापते हैं और देशभर में पाठकों द्वारा वह पसंद की जाती है। दूसरी ओर तकनीकी विषयों पर भी हमने विशेषांक निकालना आरंभ किया। जब आदरणीय एम.के. नारायण जी हमारे यहां राज्यपाल थे तो एक बार मैं उनसे मिलने गया। तब उन्होंने कहा कि देखिए मैं हिंदी बोल तो नहीं पाता पर ऑल इंडिया सर्विस में रहने के कारण हिंदी पढ़सकता हूं। लेकिन मैं हिंदी में तकनीकी विषय पर छपे विशेषांक नहीं देखता। तो मैंने इसे एक चुनौती के रूप में लिया और मैंने उर्जा विशेषांक निकाला। मैंने उनसे कहा कि मैं विशेषांक निकालूंगा पर आपको उसका विमोचन करना होगा। वे राजी हो गए, उन्होंने स्वयं उस विशेषांक का विमोचन किया। मैंने उस विशेषांक के लिए उर्जा क्षेत्र में पारंगत कई वैज्ञानिकों व जानकार लेखकों से सामग्री लिखवाई। सरकार से भी कई आंकड़े व जानकारियां मंगवाई। सबको मैंने बड़ी सरल हिंदी में छापा। स्वयं राज्यपाल महोदय को वह अंक बहुत पसंद आया। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि हिंदी में तकनीकी विषय पर ऐसा विशेषांक निकल सकता है, ऐसी उनकी धारणा नहीं थी।

तब से मैं हर साल किसी न किसी विषय पर विशेषांक निकालता हूं। जैसे पिछले कुछ सालों में मैंने पर्यावरण, जल, विद्युत, स्वास्थ्य, जी एस टी, कॉरपोरेट क्षेत्र में दायित्व आदि कई विशयों पर विशेषांक निकाले जो अपने पाठक बना चुके हैं।

आप कलकत्ता में हिंदी, अंग्रेजी, बांग्ला तीनों भाषाओं के समाचार पत्रों को छपते देख रहे हैं। आपको उनमें कैसी प्रतिस्पर्धा नजर आती है?

देखिए अंग्रेजी समाचार पत्रों को पाठक उतनी गहराई से नहीं पढ़ते जितना भाषायी समाचार पत्रों को पढ़ते हैं। आप सर्वे कीजिए तो पाएंगी कि अंग्रेजी का अखबार 15-20 मिनटों में पढ़ा जाता है जबकि हिंदी या किसी प्रदेशिक भाषा में छपा अखबार व्यक्ति घंटा भर समय लेकर पढ़ता है। उसमें इतनी सामग्री होती है, इतना साहित्य होता है कि लोग उसे डूबकर पढ़ते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि हम भी अंग्रेजी के समाचार पत्र पढ़ते हैं, उसमें छपे अन्तर्राष्ट्रीय लेख पढ़ते हैं पर हिंदी या प्रादेशिक भाषा में छपे समाचार पत्रों के अपने सुनिश्चित पाठक हैं जो उन्हें पढ़ते हैं। अतः मैं मानता हूं कि आज के बाजारीकरण के दौर में भाषायी पत्रों को अंग्रेजी से कोई खतरा नहीं है। स

धन्यवाद!

मो.9433675671

महानगर में एक जीवन्त चौपाल के 21 वें जीवन पर्व पर विशेष

25 जून 1998-2019

महानगरों के कांक्रिट जंगल में जब -स्वर और विचार के लिए दूर-दूर तक कोई स्थान नज़र नहीं आता हो तब मुम्बई की चौपाल अपवाद के रूप में सामने आती है और अपने चुनिन्दा श्रोताओं के लिए आनन्द के पल जुटाते-जुटाते बीस बरसों का अर्सा ऐसे गुजार देती है मानों कल की ही बात हो।

रेगिस्तान में हरियाली की तरह प्रकट हुई चौपाल की इक्कीसवीं वर्षगांठ पर आईये लेखिका निर्मला डोसी से चौपाल का परिचय प्राप्त करें और कुछ जाने-माने चौपालियों के अनुभव सुनें तथा अपने मित्रों से यह सवाल करें कि क्या ऐसी कोई चौपाल हमारे-आपके शहर में नहीं हो सकती है?

श्रीराम दवे, संपादक

मुम्बई की चौपाल : कलावन्तों का जौहरी बाजार

निर्मला डोसी

इमानदारी और समर्पण किसी भी उपक्रम की निरन्तरता के जरूरी तत्व है। इस सिद्धांत का मूर्तिमान स्वरूप है हमारी चौपाल। पद, पैसा, प्रचार, विवाद तथा विघटन के मूल कारक है। संभवतः देशभर में यह अकेली संस्था है जहाँ कोई पद नहीं है, पैसे का लेन-देन नहीं है और प्रचार की चाहत भी नहीं है।

बीस वर्ष पूर्व पहली चौपाल का विषय था कालिदास। आगत की कौंध तो तभी दिख गयी थी। सात्विक मनोरंजन तथा बौद्धिक रंजन का उच्चस्तरीय मंच दूसरा नहीं हो सकता, यह मैंने पहले दिन सोचा था। उत्तरोत्तर मेरी सोच पुख्ता होती गयी। महानगर के पथरीलेपन से मुठभेड़ करने के लिये हर महीने यहाँ से आक्सीजन लेना आदत में शुमार होता गया। चौपाल की नियमित आवाजाही ने मुझे सुलझाया, संतुलित किया और समृद्ध किया। मैं शुक्रगुजार हूँ और शुक्राने के बतौर उन यादगार शामों को कागजों पर उतारती रही यह सोच कर कि लिखा हुआ रह जाता है बल्कि सब बह जाता है।

दोस्तों! चौपाल कलावंतों का जौहरी बाजार है। बीस वर्ष के सफर की

आज से 21 साल पहले, शेखर सेन द्वारा प्रस्तावित, नियमित 'चौपाल' की शुरूआत मेरे जीवन का एक बहुत सकारात्मक, सार्थक, रचनात्मक और सुखद अनुभव है। दरअसल अपने बम्बई/फिल्मी जीवन के 13 साल के बाद भी, मैं यहां की जीवनचर्या से ठीक से तारतम्य नहीं बैठ पाया था। हालांकि अभिनेता के तौर पर इस बीच काफी काम मिला/किया, और साथ ही इज्जत और नाम भी मिला। फिर भी पता नहीं, एक नामालूम सी बेचैनी, एक छटपटाहट, एक कभी नहीं खत्म होने वाली अतृप्ति का अहसास मुझे हर दम, हरदम घेरे रहता था बल्कि आज भी मेरा पीछा नहीं छोड़ता। खैर, 1998 में चौपाल शुरू होने के बाद बम्बई में मेरे अगले 10/15 साल कैसे कटे, मुझे पता ही चला। हालांकि, मेरे पेशे से हमारी इस चौपाल का सीधे तौर पर कोई लेना देना नहीं था, फिर भी जीवन में ऊर्जा, और जीवन मूल्यों में अपनी आस्था को बरकरार रखने का काम निश्चित रूप से चौपाल की देन है। इन दिनों, आवास बदल जाने की वजह से फिलहाल चौपाल में मेरी सक्रियता ज़रूर कम हुई है, जिसका मुझे अफ़सोस है।

धन्यवाद चौपाल।

- राजेन्द्र गुप्ता

सुप्रसिद्ध फिल्म अभिनेता

इक्कीस साल पहले जब चौपाल की शुरूआत हुई थी तो लगा था जैसे तपती दुपहरी में ठण्डी हवा का झौंका आया है। तब से हर महीने यह झौंका सुख दे जाता है। मुम्बई जैसे शहर में इस तरह का आयोजन एक आश्चर्य ही है। साहित्य और कला की दुनिया के न जाने कितने हस्ताक्षर इस चौपाल को सार्थक बनाते हैं। हर विषय इस चौपाल की चर्चा का विषय है। हर चौपाली कुछ समृद्ध होकर ही लौटता है यहां से।

- विश्वनाथ सचदेव,
वरिष्ठ पत्रकार, धर्मयुग,
नवभारत टाइम्स के पूर्व संपादक तथा नवनीत के संपादक

भारी-भरकम गठरी को कहाँ से खोलूँ? जिधर से भी खुलेगी, जवाहारात बिखर पड़ेंगे।

चौपाल की परिकल्पना करने वाले संस्थापकों को आप बखूबी जानते हैं। चौपाल को सही अर्थों में चौपाल बनाने में राजेन्द्र गुप्ता के आंगन की भूमिका कुछ कम नहीं थी।

ऊँचे दरख्तों की घनेरी छाया, ढलती शाम की बहती बंद बयार से हिलती शाखाएं, परींदों का सरस कलरव, आगन के ठीक बीचो-बीच गोल चह बच्चे में खिले नील-कमल और बीच-बीच में श्वान मंडली का कर्णकटु स्वाभाविक स्वर।

उस आंगन का रख-रखाव बीना गुप्ता के प्रकृति-प्रेम के अतिरिक्त कई और बातों का खुलासा कर दिया करता। पेड़ पर लटका क्रास उसके दोनों तरफ टेराकोटा की रुनझुन करती घंटियाँ, आंगन के कोने में संगमरमर के मंदिर में स्थापित शिवलिंग नंदी बैल, छत पर लटका विंड चेम, पुरातत्व प्रेम की प्रतीक शाल भंजिका की खंडित मूर्तियां, मसाला पीसने वाली फूटी सिला को लाल रंग पोत कर हनुमान जी के रूप में प्राण प्रतिष्ठा कर उपयुक्त जगह टिका देना, समय का संकेत देता काठ का बड़ा सा पहिया पेड़ के सहारे टिका होता। और भी न जाने हर बार कुछ नया जुड़ जाता। कुछ हट जाता। कभी-कभी तो मूंज की बनी खटिया तक दिख जाती....बान की खटिया... ये सब मिलकर उस आंगन में, सौहार्द्र की, इतिहास की, रचनात्मकता की तथा सादगी की विलक्षण सिंफनी रच देते। छोटा सा चबूतरा चारों तरफ लटकी लतरें बेलें अर्थात गृहणी के हाथों संवरा हर कौना कुछ कहता। धुले फर्श पर चार बजे से पहले ही प्लास्टिक की चटाइयाँ बिछ जाती। वर्ष के आठ-नौ महिने वहीं जमती चौपालें। होटल व्यवसाय से जुड़े अशोक बिंदल बड़ी उदारता से अतिथि सत्कार का दायित्व निभाते, जो स्वयं एक कवि, अनुवादक तथा साहित्यानुरागी हैं। बरसात के महीनों में, दिनेश गुप्ता कविता गुप्ता की विशाल बैठक तैयार रहती, और पलक पावड़ों पर खड़ा रहता पूरा परिवार दुर्लभ पानों के स्वागत में। चौपाल की तीसरी शरण स्थली है भवन्स कॉलेज का यह भव्य सभागार जो ललित भाई द्रय के सौजन्य से हमेशा उपलब्ध हो जाता है। इस तरह अब तक चौपाल की गतिमानता कभी बाधित नहीं हुयी।

मेरे लिये चौपाल..... इस समूह के संयोजकों में, मैं ही एक अकेला था, जो ना कलाकार, ना रंगकर्मी, ना लेखक, बस एक श्रोता मात्र था। हाँ, चौपाल की वजह से बड़े बड़े लेखकों कलाकारों से परिचय होता गया और मैं खुलता गया। जाने अनजाने ये लगने लगा कि अब इनके साथ उठना बैठना है, तो कोई हुनर भी पैदा करना होगा, मात्र श्रोता या दर्शक की भूमिका में दूर तक नहीं चल पाऊंगा। कवितायें हिन्दी में लिखता था, फिर मराठी कविताओं का हिन्दी भावानुवाद किया, सराहना मिली। फिर मराठी से ही डॉ.भवान महाजन के संस्मरणों का अनुवाद किया संतोष मिला। जिन लोगों को बस गरदन ऊंची कर मंचों पर देखा करता था, उनसे आँख मिलाकर बात करने पर बल मिला, उनका साथ और आशीर्वाद भी मिला और कुछ कर पाया। दो पुस्तकों के प्रकाशन से पहचान बढ़ी। हाँ, अपने परिवार के अलावा इस शहर में, एक और विस्तारित परिवार भी मिला। कमोबेश सब एक ही मिजाज के लोग के मिलने से राह आसान हो गयी। अब बिना चौपाल के इस शहर में रहने की कल्पना असंभव है। चौपाल बिना पलक झपकाये 21 बरस पूरे कर चुकी है। सफर जारी है।

- अशोक बिंदल
कवि, अनुवादक तथा साहित्य व रंगकर्म प्रेमी

हर महीने कुछ नया करने का फैसला भी चुटकियों में नहीं हो जाता। चार माथे जुड़ते हैं तब कहीं जाकर विषय तय होता है। चौपालियों को सूचित किये जाने वाले एसएमएस भी भरपूर रचनात्मकता से दिये जाते हैं। प्लेटफार्मों पर दी जाने वाली सूचनाओं की तरह नीरस नहीं होते।

महानगर की व्यस्ततम जीवनचर्या में छुट्टी के दिन पाँव पसार कर सोने-सुस्तानें की जगह बड़ी संख्या में लोग जुटते हैं। कुछ अपनी कहने, कुछ सुनने जो यह मानते हैं कि बहुत कुछ जानने के बावजूद, अभी बहुत कुछ जानना बाकि है।

चौपाल के विषय, विशिष्टजनों के आगमन तथा उनकी दुर्लभ बातों का विवरण देने जितना समय तो मैं नहीं ले सकती। कुछ ऐसी शामों का जिक्र करना चाहूँगी जब स्वयं अपने ही बनाए हुए शिखरों को चौपाल ने लांघ दिया था। दरअसल पूर्व नियोजित सिर्फ विषय रहता है। उस पर कौन क्या बोलेगा यह किसी को अक्सर पता नहीं होता। यहां तो ऐसे-ऐसे दिग्गज आते हैं और ऐसी बातें कह जाते हैं जो इति पूर्व न कहीं कही गयी होती है न छपी होती है। माहौल ही ऐसा अनऔपचारिक तथा आत्मीयता से भरपूर रहता है कि यादों की बंद गिरहें खुलने लगती है।

रिचर्ड एटनबरों की गांधी तो सभी ने देखी होगी किन्तु उसके बनने की कहानी रोहिणी तथा जयदेव हटगंड़ी की जुबानी सुनना विरल घटना थी। धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, अमृत प्रितम, कैफी आजमी, अमृतलाल नागर जैसी महान हस्तियों के संस्मरण - डॉ.चन्द्रप्रकाश द्विवेदी, पुष्पा भारती, विश्वनाथ सचदेव, जावेद सिद्धिकी से सुनना चौपाल में ही संभव है। इप्टा के कुलदीप सिंह तथा उनके होनहार पुत्र जसबिन्दर सिंह की जोड़ी ने तो एक बार ऐसा इतिहास रचा कि समूचा सभागार अश-अश कर उठा। अक्सर कुलदीप जी अपने लाव लश्कर के साथ गीतों का जादू जगाते हैं। गौरतलब यह होता है कि गुरु के चेहरे से झरता वात्सल्य और शिष्यों की आँखों में पसरा आदर स्पाट पढ़ा जा सकता है। आज के बिरल समय में जरा सा आश्वस्त करता है। केदारनाथ अग्रवाल की रचना। ''हम अंधेरों को जगमगाना चाहते हैं और दुश्यंत कुमार की ग़ज़ल 'मैं सज़दे में नहीं हूँ' या फिर हस्ती जी की रचना 'तुम बुलंदी कहते हो जिसको मिंया, सुनना उस शाम को स्मृति पृष्ठों में सहेजे रखने योग्य बना देता है। शेखर सेन जब गाते हैं 'मैया तेरी याद सताए रे' तब सबकी आँखें नम हुए बिना नहीं रहती। इस गीत पर तो सिसकियां तथा कपोलों पर ढुलकते आँसु तक देखे हैं मैंने। संवेदना शून्यता के इस विकट समय में भी अन्तर्मन की आर्द्रता किसी के प्रयत्नों से बाहर निकल आती है तो समझना चाहिए बहुत हताश होने की जरूरत नहीं है।

मुम्बई में नाट्यकर्मियों को 'पृथ्वी थियेटर' जितना प्रिय है उतना ही प्रिय साहित्य, संगीत और कला साधकों को चौपाल है।' बीस वर्षों से लगातार हर महीने एक अलग तरह का कार्यक्रम कभी साहित्य कभी संगीत कभी कुछ कभी कुछ एक से एक बेजोड़ा और स्तरीय। विभिन्न विभूतियां अपनी प्रस्तुति से कार्यक्रम को जीवंत बना देती है। ताज्जुब तो यह है इस 'चौपाल' का न तो कोई अध्यक्ष है न सेकेट्री न कोषाध्यक्ष न कोष न कोई संविधान। सचमुच में 'चौपाल'।

पद्मश्री शेखर सेन, सिने अभिनेता राजेन्द्र गुप्ता, संवाद पटकथा लेखक अभिनेता अतुल तिवारी, कवि अनुवादक व्यवसायी अशोक बिंदल, कवियित्री कविता गुप्ता, दिनेश गुप्त सभी मिलकर हर महीने एक कार्यक्रम की कल्पना करते हैं। उस कार्यक्रम से संबंधित विभूतियों को आमंत्रित करते हैं। और ये सभी खास लोग आम आदमी की तरह कार्यक्रम को सफल बनाने में लग जाते हैं। मेरा सौभाग्य है सबसे हटकर सबसे अलग इस निराली चौपाल का मैं भी एक चौपाली हूं।

हस्तीमल हस्ती
(जाने-माने ग़ज़लकार एवं गायक)

इतिहास, भूगोल, साहित्य और समय सब की नब्ज पर कुशल वैद्य की तरह हाथ रखने वाले अतुल तिवारी अक्सर चौपाल के सारथी होते हैं। सधी शैली गहरा अध्ययन तथा विषय पर पूरी तैयारी के साथ कमाल का संचालन करते हैं। शब्दों को साधने की गजब महारत है राजेन्द्र गुप्ता के पास। जब वे माइक पर होते हैं तो दर्शक सिर्फ श्रोता नहीं रहता। चलचित्र देखने लग पड़ता है। पं. विनोद शर्मा जैसा हिन्दी का माणिक स्तम्भ तो ढह गया पर कितने चौपालियों के उच्चारण शुद्ध करते देखा हैं मैंने उन्हें। यज्ञ शर्मा अक्सर गंभीर मुख मुद्रा बनाए ऐसी नंगी खारी किन्तु खरी कह जाते कि श्रोता तिलमिला कर रह जाते। मैथिलीशरण गुप्त के जयद्रथ वध को कोर्स में पढ़ना अलग बात थी। चौपाल में चंदर खन्ना डेढ़घंटे के एकल नाट्य प्रस्तुति के समय सभी को अभिमन्यु के साथ चक्रव्यूह में ले जाते हैं। गुलजार साहब जब कभी भी आते हैं और कविताएं सुनाते हैं हैं तब तो कहना ही क्या है। उस वक्त उनके चेहरे पर जो नूर उतर आता है उसे देखकर खुद पर गर्व करने से रोक नहीं पाते कि हम इन अनमोल लम्हों के साक्षी हैं।

1999 के अंतिम महीने की चौपाल नामचीन कवयित्री सुनिता बुद्धिराजा के घर थी। उनकी बड़ी सी बैठक में अनगिनत विघ्नविनाशक विराजें हुए थे। छोटी बड़ी मूर्तियां, चित्र, टेराकोटा की रूनझुनं करती घंटियां, बेहद खुशनुमा वातावरण था। साहित्य संगीत, रंगकर्म व रूपहले पर्दे के दिग्गजों का जमावड़ा था। विषय था चौपाल का 'दुनिया की औरत बनाम औरत की दुनिया' वरिष्ठ कथाकार सुधा अरोड़ा संचालन कर रही थीं। औरतों की त्रासदी पर अलापा जाने वाला घिसा-पिटा राग कतई नहीं था उस दिन। दुनियाभर की महिला लेखिकाओं की रचनाओं के द्वारा औरतों के हालातों का जायजा लिया गया था। विषय खासा गंभीर था। औरतों के संदर्भ में पूरी दुनिया का सच कमोबेस एक सरीखा है। नीम करेले सा कसैला।

चौपाल का तापमान बढ़गया था। उसे समय पर लाने के लिए कामयाब कोशिश की राजेंद्र गुप्ता तथा सीमा भार्गव पहाना ने। उनके प्रस्तुत किये लघु नाटकों ने श्रोताओं को अपनी गिरफ्त में ले लिया। रविन्द्रनाथ ठाकुर पर जो चौपाल हुयी उसका खुमार तो कई दिनों तक तारीफ रहा। उनके रविन्द्रसंगीत के तिलस्म तथा वैविध्यपूर्ण विराट व्यक्तित्व पर बात करने के लिए चार घंटे का समय तो एक झलक भर ही दिखा पाया। फिर एक चौपाल में नजीर अकबराबादी के नगमें गूंजे तथा रवि बाबू के रंग बिखरे। अशोक भौमिक ने रवि बाबू की चित्रकारी पर तथा कुलदीपक सिंह तथा उनकी शिष्य मंडली ने नजीर की नज्मो से चौपाल के इतिहास के एक और यादगार पृष्ठ जोड़ दिया। अक्सर कार्यक्रमों में गुणी कलाकारों को एक दो रचना सुनाने का मौका दिया जाता है जिससे श्रोताओं की संतोष नहीं होता। चौपाल का चार घंटे का समय सिर्फ एक या दो व्यक्तियों के लिए रखा जातमा है तो उसका आनंद व फलित अलग ही होता है। रविन्द्र जैन, सत्यदेव दुबे, हंगल साहब, हबीब तनवीर, संगीत कार जयदेव, मदन मोहन, पंचम दा, अमृतलाल नागर, अमृता प्रीतम, गुलज़ार, हस्तीमल हस्ती, कुंवर बेचैन, नादिरा बब्बर किस-किस का नाम लूँ और किसका छोड़ूं। इक्कीस वर्षों से जारी यह सिलसिला मुम्बई जैसे महानगर में अरब सागर की नमकीन हवाओं के साथ संतुलन साधने वाली बसंती बयार है जो हर महीने बहती है तथा सुधी श्रोताओं के अंतस को आरोग्य करती है। कलाओं में यह तासीर होती है जिसके संसर्ग में रहने से इंसान के भीतर के विकार घुल जाते हैं, विसंगतियां निष्प्रभावी हो जाती हैं। कलाओं का वरदान तो कुछ भाग्यवानों को ही मिलता है। थोड़ा समय कलाओं-कलाकारों के साथ गुजार कर सुकून पाया जा सकता है संस्कारिता हुआ जा सकता है, उर्जा पायी जा सकती है। भीतरी कायाकल्प करने वाली चौपाल मुम्बई की आरोग्यधाम बन गयी है।

चौपाल के बारे में एक जरूरी बात यह कि देशभर में कहीं भी कुछ अप्रिय

मुम्बई में शिफ्ट होने के दो बरस बाद मुझे चौपाल जाने का मौका मिला। मैं सुखद आश्चर्य से अभिभूत थी कितने ही प्रतिभावान विभूतियों का यह खूबसूरत मंच। पता नहीं कब और कैसे संस्थापक चौपालियों ने मुझे मेरे परिवार के साथ पूरी तरह से चौपाली बना लिया। फिर चौपाल हम में रम गई है और हम चौपाल में।

कविता गुप्ता, कवयित्री एवं साहित्यप्रेमी

तन को स्वस्थ रखने के लिए जैसे उत्तम भोजन आवश्यक है, मन को स्वच्छ रखने के लिए उत्तम ज्ञान व स्वस्थ मनोरंजन आवश्यक है। जिस प्रकार माता-पिता उत्कृष्ट पोषण के द्वारा बच्चों को स्वस्थ रखते हैं, चौपाल हर बार साधारण से असाधारण विभिन्न विषयों द्वारा उपस्थित सभी कलाप्रेमियों के मानसिक संवर्धन करती है। दुनियादारी की खातिर लगाये गये मुखौटे उतार फेंक निर्मल निश्छल भाव से सभी अपने प्रतिभाओं को प्रस्तुत करते हैं। कई छुपी प्रतिभा निकल आती हैं। ना है कोई बड़ा ना ही कोई छोटा।

गुरुदेव के शब्दों में कहे....
हम सभी राजा हमारे राजन के राज में
वर्ना उस राजन के संग हम मिले भी कैसे।

- श्रीमती श्वेता सेन, मुम्बइ

अवांछनीय या अवैधानिक घटित हो और उसकी प्रतिक्रिया चौपाल में दर्ज न हो यह संभव नहीं। जबकि चलन तो यह हो गया है कि समाज के बड़े-बड़े पहरूए और लिक्खाड़ भी निहित स्वार्थों के दबाव में खामोश रह जाते हैं जुंबिश तक नहीं लेते। ऐसे में कौंधती है पंजाबी कवि पाश की जलती पंक्तियाँ ''सबसे खतरनाक वह आँख होती है, जो सब कुछ देखती हुयी भी जमींबद रहती है।'' महाराष्ट्र विधानसभा में हिन्दी में शपथ लेने वाले सदस्य पर लाल घूँसे बरसाने जैसी घटना हो या सीमा पर भारतीय जवान का सिर काट पड़ोसी देश द्वारा फैंका जाना हो या फिर इतिहास के काले धब्बे की तरह दर्ज गोधरा कांड हो। चौपाल में उसी महिने इस पर प्रतिक्रिया दर्ज हुयी, विरोध हुआ।

हां याद आया साबरमती एक्सप्रेस वाले लोग दर्शक कांड पर उस महीने की चौपाल में जो घटा वह अद्भुत था विलक्षण था।

निरंजन श्रोत्रिय की कविता को रंगमंच के निष्णात कलाकार राजेन्द्र गुप्त पढ़रहे थे और दूसरे सुरों के साधक शेखर सेन उसके संगीतमय भाग को बिना किसी साज के साकार कर रहे थे। यकीन मानें! श्रोताओं के कलेजे में टीसें उठने लगी थी। ऐसी दर्द की लहरें कि न आह निकले न वाह। क्योंकि वहां तो आह और वाह से भी उँची शै पसर चुकी थी। आप शायद नहीं समझे कि मैं कह क्या रही हूँ। कैसे समझोगे? उस दुर्लभ मंजर को देखने-सुनने वाले भी तो दंग रह गए थे। यही सभागृह था दोस्तों। सन्नाटा ऐसा पसरा कि सूई भी गिरती तो धनगरज सी बज उठती। कविता में साबरमती एक्सप्रेस की झुलसी बोगी का दृश्य था, उसी गाड़ी में होती है पंडित शिवकुमार शर्मा के संतूर और उस्ताद शफ्फाक अली खान के तबले की जुगलबन्दी।

राजेन्द्र गुप्ता तथा शेखर सेन ने उस दिन जो कर दिखाया उसे बयान कर पाना शब्दों के बड़े-बड़े शिल्पियों के लिये भी संभव नहीं मेरी तो बिसात ही क्या है।

एक और जरूरी बात कि रचनाकार अपने रचनाकर्म के कारण अमर हो जाता है किन्तु, उनकी रचनाएं अमर होती है निरंतर चौपाल जैसी समर्पित संस्थाओं के प्रयत्नों से

सूर, तुलसी, कबीर, विवेकानंद के काम को बार-बार लगातार दोहराया जा रहा है। नज़ीर अकबराबादी की नज़्में, दुश्यंत की गजलें, फ़ेज़, कैफी या अन्य अदीबों का ऐसे कलाम जो अब तक छुए नहीं गए उन्हें संगीतबद्ध करके जन जन तक पहुँचाने का दायित्व वजह करते हैं चौपाल के माध्यम से और उनके इस काम का मूल्यांकन कर पाना हर किसी के बूते में नहीं है। समय ही वह तराजू है जिस पर चढ़कर ऐसे कामों को इतिहास में दर्ज होना है।

चौपाल की इक्कीसवीं वर्षगांठ पर सभी चौपालियों को शुभकामनाएँ।स

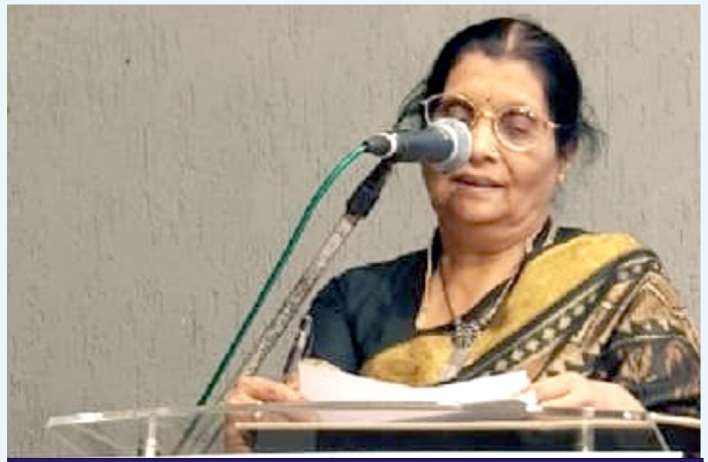

मोबाइल - 9322496620

चौपाल के जन्म के इक्कीस वर्ष पूरे हो गए। मैं तभी से इससे जुड़ा हुआ हूँ। इतना लंबा बरसा तो मैंने अपने घर, माता-पिता, पत्नी या किसी भी संस्था के साथ नहीं बिताया। पढ़ने लिखने के लिए दूर भी जाना पड़ा था। किसी संस्था को जारी रखने के लिए इक्कीस वर्ष का समय कम नहीं होता। ऐसा होने के कई कारण है। 1998 में हम 5-6 लोगों ने मिलकर चौपाल की परिकल्पना की थी तभी तय हो गया था कि यहाँ मनोरंजन के साथ ज्ञानरंजन व रसरंजन भी हो। उस परिकल्पना को उम्मीद से भी ज्यादा साकार कर पाएं इसका संतोष है। साथ ऐसे मिले जो एक से अधिक फनों में माहिर होते हुए भी एक-दसूरे को खुद से बड़ा मानते हैं, सम्मान देते हैं। हम सभी को अक्सर मुम्बई से बाहर जाना पड़ता है परन्तु किसी की गैर मौजूदगी में चौपाल की मासिक बैठक की जिम्मेदारी जो यहाँ उपस्थित रहता है वो संभाल लेता है। गौरतलब यह कि कभी किसी के बीच कोई मतभेद नहीं हुआ। एक-दूसरे के प्रति विश्वास तथा सम्मान का भाव इसके मूल में है। मुझे अक्सर संचालन का दायित्व सौंपा जाता है जबकि मुझसे कहीं ज्यादा विद्वान तथा वरिष्ठ लोग यहाँ है। मुझे यह स्वीकार करने में कोई गुरेज नहीं है कि संचालन करते रहने के कारण अनेकानेक विषयों में मेरा ज्ञानवर्धन हुआ है। आप पर विश्वास करके रथ हवाले कर सारथी बनकर डोर हाथ में सौंप दी जाती है तो उस विश्वास की रक्षा करने के लिए मैं भी कोई कसर नहीं छोड़ना चाहता। लिहाजा विषय की गहराई में उतरता चला जाता हूँ। प्रेमचंद की कहानी 'पंच परमेश्वर' का जिक्र करना चाहूँगा। पंच के आसन पर जिस विश्वास के साथ बैठाया जाता है वही विश्वास स्वयं ही पूर्ण न्याय करा ले जाता है। कदाचित मेरी साथ भी यही होता है। मैं बखूबी जानता ही नहीं मानता भी हूँ कि यह श्रम मुझे दिनोंदिन समृद्ध कर रहा है। हमारे साथियों में डॉ.चन्द्रप्रकाश द्विवेदी कुशल वक्ता, फिल्म निर्माता, निर्देशक, और लेखक हैं। राजेन्द्र गुप्ता वरिष्ठ अभिनेता होने के साथ बड़ी दमदार आवाज के धनी हैं जिनको सुनने के लिए लोग पलक बिछाए इंतजार करते हैं। शेखर सेन एकल नाटकों में इतिहास रचने वाले तथा संगीत की सब विधाओं के साधक तथा सुकंठी गायक हैं। अशोक बिंदल संवेदनशील कवि कुशल अनुवादक तथा गहरे साहित्य अनुरागी हैं। हम सब चौपाल के जन्म के साथ-साथ हैं। हमारी चौपाल के तीन आंगन है। शुरूआत गुप्ताजी के आंगन से हुई। अब भवस कालेज के भव्य सभागार में हर माह चौपाल होना बड़े सम्मान तथा गर्व की बात है। चौपाल की तीसरी शरण स्थली है दिनेश गुप्ता तथा कविता गुप्ता की विशाल बैठक। 40-50 लोगों से शुरू हुआ सफर 200 श्रोताओं तक जाने लगा है। चौपाल को गरिमा बख्शने में इसके गुणी श्रोताओं की महत्वपूर्ण भूमिका का जिक्र करना आवश्यक है। आज के विषम समय में सिर्फ अपनी कहने और किसी की भी न सुनने की प्रवृत्ति महामारी की तरह फैली हुयी है ऐसे वक्त में हमारे गंभीर श्रोता छुट्टी के दिन दूर-दूर से आकर चार घंटे धूनी रमा कर निःशब्द हमें सुनते हैं। हमारे एक चौपाली वर्षों से हर कार्यक्रम को रिकार्ड ही नहीं करते उसे अपडेट भी करते रहते हैं तो दूसरी चौपाली है जो बिना इधर-उधर देखे नोट पेड पर लिखती रहती हैं। उनका कहना है कि 'लिखा हुआ रह जाता है बाकि सब बह जाता है' कदाचित उन दुर्लभ क्षणों को कालजयी बनाने की और बार-बार जीने की ललक हो। देशभर में ही नहीं विदेशों तक में हमारी चौपाल की खबर है हम सभी के लिए यह हर्ष का विषय है।

- अतुल तिवारी,

वरिष्ठ साहित्यकार, रंगकर्मी, निर्माता एवं विचारक

अध्ययन आकलन

रमेश दवे

'स्याह उजाले' : कविता में बेचैन एक समाजवादी

रघु ठाकुर एक वरिष्ठ राजनीतिज्ञ हैं। विचार और कर्म से जेन्युइन या जायज समाजवादी हैं। लोहिया उनके वैचारिक और राजनैतिक प्रति-नायक हैं क्योंकि लोहिया सदैव ऐसा एकल प्रतिपक्ष रहे हैं जो सत्ता का सिंहासन वाणी से हिला देते थे। रघु ठाकुर उसी परंपरा के नेता, वक्ता और कार्यकर्ता हैं और आज भी अपने अन्दर वही समाजवाद जीते हैं जो लोहिया, आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी, मधु लिमये, जार्ज फर्नेनडीस से लेकर किशन पटनायक तक ने जिया। फर्क इतना है कि वे तमाम समाजवादी जनता की भाषा या बोली का गद्य बोलते थे जबकि रघु ठाकुर उस जन-गद्य के साथ अपनी कविता में जन-पद्य या जन-काव्य रचते हैं।

'स्याह उजाले' रघु ठाकुर का ताजा कविता-संग्रह है। इन कविताओं में आलोचक भाषा, शिल्प, विचार और काव्य परंपरा के वे गंभीर-तत्व न खोजें जो कविता को यथार्थवाद या कलावाद का नाम देकर उसकी समीक्षा करते हैं। रघु ठाकुर ने स्वयं भी यह स्वीकार किया है कि वे जो देखते, अनुभव करते और सोचते हैं, उसे जन-भाषा में लिख देते हैं। गंभीर होने का वे दावा नहीं करते। इन कविताओं को पढ़ते हुए इतना जरूर लगता है कि रघु शिल्प और किसी कलावादी सौन्दर्य के मर्मज्ञ होते या यथार्थवाद के कथित संवेदन से जुड़े होते तो ये सीधी-सादी कविता अपनी अभिव्यंजना में धूमिल जैसे कवि के पास खड़ी हो जाती।

कथाकार मुकेश वर्मा ने कवि कुँवरनारायण के उद्धरणों को देकर एक प्रकार से रघु की कविता की भी प्रकृति प्रकट कर दी है। कुँवर नारायण कहते हैं -

''कविता वक्तव्य नहीं गवाह है/ कभी हमारे सामने/ कभी हमसे पहले/ कभी हमारे बाद/ कोई चाहे भी तो रोक नहीं सकता/ भाषा में उसका बयान।''

रघु ठाकुर की लगभग सभी कविताएँ भाषा में बयान की तरह हैं। यह कवि का वह समाजवादी तेवर है जो स्वयं से भी जूझता है, सत्ता से भी और समाज की विसंगतियों से भी। जिस समतामूलक समाज की कल्पना रघु ठाकुर करते हैं, वह अभी भारतीय लोकतंत्र में तो एक असंभव स्वप्न भी है। सत्य भी है लेकिन इस असंभव सत्य से भी समाज को सतत चेतनावान और जाग्रत बनाना भी तो एक कवि का दायित्व है जो रात-दिन जन, समाज, किसान, मजदूर आदि की पीड़ा में से अपने शब्द खोजता रहता है और उनसे कविता करता है।

कविता में सबसे बड़ा तत्व होता है अपने अनुभव, विचार एवं संवेदन को कम शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त कर देना कि सामान्य-जन कविता को पढ़सके, सुन सके और समझ सके। रघु ठाकुर तो अपने वक्तव्य में गंभीर यथार्थवादी या कलावादी होने की बात कतई नहीं मानते बल्कि उनकी कविता का शिल्प तो शब्दों में व्यक्त ईमान है। समाज से जीवित सम्पर्क में रहकर वे जो जो देखते, सुनते और सोचते हैं, उसके कुछ महत्वपूर्ण काव्यांश प्रस्तुत हैं।

सामान्य जन की पीड़ा को महसूस करते हुए वे कहते हैं 'ईश्वर तुम कहाँ हो' शीर्षक की इस प्रथम कविता में।

''ईश्वर तुम कुछ बोलते क्यों नहीं/ ईश्वर तुम कुछ करते क्यों नहीं/ तुम्हारे मन और तन पर/ इन दर्दभरी पीड़ाओं के निशान क्यों नहीं।''

अपने राजनीतिक आदर्श लोहिया को याद करते हुए ''सुनो लोहिया'' नामक कविता में नदी-संस्कृति के महत्व पर कहते हैं -

''लोहिया ने याद दिलाया था/ ये गंगा के घाट/ ये जमुना के घाट/ संस्कृति के/ रचनाकार है।''

रघु ठाकुर अपने समय की विसंगति से क्षुब्ध होकर शहरी सभ्यता पर यह मार्मिक कटाक्ष करते हुए ''चमड़ी खींच लो'' नाम की कविता में कहते हैं - ''और हमारे शमशानों पर वे बाजरा उगायेंगे/ हम अपने घरों में पुरखों की लाश जलाएँगे।''

इसी कठोर व्यंग्य को आगे बढ़ाते हुए यह उदाहरण भी ध्यान देने योग्य है-

''शहर तुम्हें अब प्रगति के पथ पर चलना है/ अब तुम पिछड़े मत रहो/ अब तुम्हें स्मार्ट बनना है।'' (ओ शहर)

'स्मार्ट' का एक अर्थ चालाक-चतुर भी होता है। इसलिए यहाँ 'स्मार्ट' शब्द का व्यंग्यात्मक प्रयोग है। ''स्वप्न देखने पर बंदिश होगी'' भी एक प्रकार से हमारे समय का छल भरा विद्रूप है। आगे रघु बड़ी ईमानदारी से यह भी कहते हैं कि उनके लिए कविता क्या है-

''समाज तक पहुँचाने का/ कविता हथियार है।''

'दंगा' नामक कविता में आक्रोश के साथ रघु जिस विडंबना को रचते हैं वह इन पंक्तियों में कितना बड़ा सत्य है-

''मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारों में/ और सब तो बच गए/ पर धर्म बिचारा उस रात, शर्म में डूब कर/ अपनी ही मौत मर गया।

रघु ठाकुर का शब्द-शिल्प संपूर्ण रूप से समाज-शास्त्रीय है और साथ ही सामाजिक विसंगतियों, उत्पीड़नों, भूख, गरीबी, दिखावा या पाखंड से उपजा है। चूंकि रघु ठाकुर समाज-धर्म में सक्रिय हैं अपने विचार के साथ, अपने ईमानदार आदर्श के साथ और अपनी मानवीय संवेदना और करूणा के साथ, इसलिए कहा जा सकता है कि ये कविताएँ जिस 'स्याह उजाले' में लिखी गई हैं, वह 'स्याह' का रूपक आज के माहौल में कितना सार्थक है और उजाले को स्याह बनाने वालों के प्रति इस एक शब्द में कितनी बेचैनी है।

कविता एक जटिल विधा है। अनेक लोग भावावेशयुक्त भावुकता में गीत, कविता, नज्म, गजल, हाइकू आदि लिखते हैं और ऐसा जोश प्रायः युवा कवियों में अधिक होता है। रघु ठाकुर उस श्रेणी में इसलिए नहीं आते क्योंकि एक तो वे अनुभव-पक्व और समाज-संवेदी कर्मठ कार्यकर्ता हैं और आम-जन के प्रति अपनी समाजवादी आस्था और समतामूलक समाज निर्माण के संकल्प से जुड़े हैं, दूसरे वे अपने को उस स्तर के कवि के रूप में स्वयं भी प्रस्तुत नहीं करते कि उन्हें किसी प्रतिबद्धता से जोड़कर पढ़ा जाए। वे तो कविता में संवाद करते हैं, कविता में प्रतिवाद करते हैं और कविता से समाज की चेतना को स्पंदित करते हैं। उनके बारे में डॉ. विजय बहादुर सिंह का कहना है-

''यह दावा शायद उचित नहीं होगा कि कवि रघु ठाकुर की ये कविताएँ, कितनी कविताएँ हैं, इससे कहीं जरूरी होगा यह सोचना कि एक अन्यथा क्षेत्र में चौबीसों घंटे रमा और डूबा हुआ एक लोकसेवी अपनी बेचैनियों को किन रूपों में अपने समय के लोगों के साथ 'शेयर' करना चाहता है।''

कवि लीलाधर मंडलोई 'मेरी नजर में एक संक्षिप्त लेख में कहते हैं -''कविता कवि का औजार और हथियार है और अभिव्यक्ति के लिए अपने औजार और हथियार के प्रयोग में रघु ठाकुर चूकते नहीं भले ही वे कविता की शर्तों को पूरा न कर पाएँ।''

इस संग्रह का नामकरण कवि ''रामचरण सिंह साथी ने 'स्याह उजाले' नाम देकर किया है जो कविता की तासीर के अनुकूल है। स्वयं रघु ठाकुर का कहना है -''मैं काव्य शिल्प और तरन्नुम का बिलकुल भी जानकार नहीं हूँ काव्य-रचना को कभी प्रायोजित ढंग से करता भी नहीं हूँ। मुझे तो जब कभी कोई घटनाएँ, विचार या भावनाएँ घेरती हैं तो मैं उन्हें जस का तस शब्दों में उतार देता हूँ।'' (आमुख)

इन कथनों से स्पष्ट है कि कवि रघु ठाकुर एक ऐसे कवि हैं जो कविता को जीवन का पर्याय मानकर जीवन-गत अनुभव को ही रचते हैं। इस दृष्टि से यह संग्रह महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। स

सुख चालाक है : बया के घोंसले की तरह कविता

रमेश दवे

कवि, साहित्यिक-पत्रकार और विचारजीवी प्रो. सरोज कुमार कविता में जीवन और जीवन में कविता जीते हैं। वे कविता में सत्य भी देखते हैं और स्वप्न भी। एक कवि की प्रज्ञा में होता ही क्या है सिवा संवेदना के साथ सुख-दुख की मार्मिक मनुष्यगत अभिव्यक्ति के। शब्द तो मात्र माध्यम होते हैं लेकिन शब्द ही तो कल्पना के परिधान होते हैं, शब्द ही विचारों की आंतरिक अर्थ-शक्ति होते हैं सरोज कुमार की कविताएँ समकालीन कविता की उन प्रतिबद्धताओं से मुक्त हैं जो शब्दों को विचारधाराओं में कैद करती हैं। इसलिए रचना का एक स्वाभाविक गुण उनकी वैचारिक स्वाधीनता और स्वायत्तता भी है।

सरोज कुमार की एक छवि मंचीय हास्य-व्यंग्य के कवि के रूप में रही है लेकिन उन्होंने काव्य की न्याय-दृष्टि अपना कर सामाजिक संवेदन के साथ शिल्प के सौन्दर्य और कल्पना के कलात्मक बिम्बों की रचना की है जैसे कविता-संग्रह के फ्लेप पर लिखी यह कविता -

कविता है मेरी कोशिश/पहाड़ों पर चढ़ाई की तरह/
कविता है मेरा सपना/ पेड़ पर फूलों की तरह/
कविता है मेरी सुविधा/ कुएं की रस्सी की तरह/
कविता है मेरी रचना/ बया के घोसले की तरह/
कविता है मेरी दुश्मन/ कमरे के दर्पण की तरह/

सरोज कुमार की उक्त कविता में उतरे समस्त बिम्ब उनकी आंतरिक चेतना से उद्भूत हैं और नये प्रयोगों में साकार हुए हैं। 'बया के घोंसले' का बिम्ब तो एक साथ अनेक अर्थ प्रकट करता है। घोंसले की बहुमंजिला बुनावट, घोंसले का जलाश्रय के निकट किसी पेड़ की डगाल पर इस प्रकार लटकना कि कोई अन्य प्राणी उसे क्षतिग्रस्त न करे, घोंसले में घर की सुरक्षा, संतान की सुरक्षा और अंततः घोंसले का कलात्मक स्थापत्य ये सब अर्थ जब मन में आते हैं तो लगता है कि एक साहित्यिक-रचना है ही क्या, बया के घोंसले में निरूपित काव्य-सिद्धांत की तरह। ये ही बिम्ब तो एक श्रेष्ठ रचना के काव्य-मानक हो सकते हैं। इस दृष्टि से सरोज कुमार के अनुभव में आकार लेते ये बिम्ब जब शब्द में ढलने हैं तो शब्द, शब्द न रह कर बिम्ब का सौन्दर्य ग्रहण कर लेते हैं।

'सुख चालाक है' की कविताएँ दो अलग-अलग धरातलों पर प्रत्यक्ष होती हैं। जब सरोज कुमार अपनी चेतना के गहन विचार लोक में होते हैं तो कविता की मुद्रा दर्शन का रूप ले लेती हैं लेकिन जब भौतिक जीवन के ठोस अनुभवों से टकराती हैं और यथार्थ का कलेवर धारण करती हैं तो वहाँ कवि की चेतना शिथिल हो जाती है और कविता बिम्ब में प्रकट होने के बजाय बयान बन जाती है जो प्रायः समकालीन कविता के प्रतिबद्ध कवियों में देखी जा सकती है। कभी कभी सरोज कुमार अपने स्वाभाविक रंग में आकार जब वक्र मुद्रा या व्यंग्य मुद्रा अपनाते हैं तो कहते हैं -

जोकरों में कविता खोजने वाले
कविता में

जोकर खोजने आते हैं।

यह अभिव्यक्ति व्यंग्य से अधिक विडम्बना की है और सरोज कुमार आज के पाठक श्रोता या स्वयं कवियों में भी यही पाते है कि जो कविता के आंतरिक मर्म को हानि पहुँचाते हैं वे कविता को रसहीन किस प्रकार बना कर उसे सस्ते मनोरंजन का साधन बना लेते हैं। सरोज कुमार जब संवेदन के धरातल पर आते हैं तो फिर समाज की सुख-वृत्ति में एक प्रकार की विडम्बना देखते हैं -

"सुख चालाक है/ भटकाता है/ अपने पते पर कभी नहीं मिलता/"

इस पंक्ति का विलोम रचते हुए वे दुख की प्रकृति की निरीहता को इस प्रकार व्यक्त करते हैं -

"दुख भोला भाला है/ दूसरों के पते पर भी/ मिल जाया करता है।"

इसी प्रकार खतरे में वे प्यार की विडम्बना रचते हुए कहते है-

"संसार में ज्यादा प्यार से बोलना/ खतरनाक है।" (खतरा)

कहीं कहीं हमारे समय की अपराधी वृत्ति के प्रति सरोज कुमार में आक्रोश भी पैदा होता है-

"तुम भी मुझे पा सकते हो/ भरपेट खा सकते हो/ खरीदो/ माँगो/ या छीनो/ या

चुपचाप मर जाओ/ जो नहीं सधें तीनों/ (किस दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम)

पर्यावरण कविता में सरोज कुमार आधुनिकता पर भी व्यंग्य करते हुए यह प्रयोग करते हैं -

"सभ्यता के सिर पर/ शेम्पू के झाग थे/ ....अर्थ से अनुपस्थित/ शब्दों के सिर सेहरा/ धड़ ही धड़ राजनीति/ गायब था चेहरा/ (पर्यावरण)

सरोज कुमार में जब उनकी दर्शन-प्रज्ञा चेतस होती है तो वे "वेलेंटाइन" जैसी कविता में कहते हैं

"प्यार तो हमारी शिराओं में/ बहने वाली नदी है/ सांसों को स्वर देने वाली/ हवा है/ अंतरंग की ऊष्मा है/ धूप है।

एक जायज कवि के पास उसकी चेतना का ताप, उसकी ऊष्मा, उसकी धूप ही तो उसके बिम्ब बन कर आते हैं और कविता शिराओं में नदी की तरह बहने लगती है, प्यार बन कर, हवा बन कर सरोज कुमार हमारे समय के पाखण्ड-जीवी समाज को देखकर श्रुब्ध हैं और अपना क्षोभ प्रकट करते हैं -

"कितने यज्ञों/ कितने हवन कुण्डों में/ और कितने धर्माचार्यों का/ गुणा करें/ कि नैतिकता की/

एक किरण पा सकें/ (सवाल)

'अणुबम की रिहर्सल' नामक कविता में यह क्षोभ विस्तार पाता है, इन पंक्तियों में -

स्कूल मरणासन्नों के गोदाम/ बन गए हैं/ ....सड़कें आदमी के जिस्म पर होकर जाती हैं/

सरोज कुमार को लगता है कि हमारा समय न तो कविता-समय है, न संवेदन-समय और आत्म-समय। आज का मनुष्य अन्य-समय या अन्यों के समय में जीने लगा है। इसलिए कविता की विडम्बना यह है -

"क्यों सुनाना चाहता हूँ मैं/ इतने बहिरंगों को अंतरंग कविताएँ/

इन दो छोटी पंक्तियों में अंतरंग और बहिरंग का जो प्रतिलोम रचा गया है उससे अर्थ की जो सृष्टि कविता में हुई है, उससे बहुरंग और अंतरंग का अर्थ-उन्मेष और अर्थ-विस्तार कितने स्वाभाविक ढंग से हुआ है।

सरोज कुमार जब व्यक्तिगत-सम्पर्क को स्मृति बना कर होमी दाजी का व्यक्तित्व रचते हैं तो कविता किस प्रकार मनुष्य हो जाती है- यह इन पंक्तियों में देखा जा सकता है -

"जिसके पास हौसला होता है/ उसे किसी चीज की कमी/ महसूस नहीं होती/ क्योंकि होमी दाजी जो करते थे वह यह था-

दाजी को शब्दों वाली कविता/ नहीं थी पसंद/ वे अपनी कविता सड़कों पर लिखते थे/ शब्दों की जगह होते थे/ अपने हकों के लिए जूझते इंसान/ उनकी गजल का/ मतला होता था/ इंकलाब/ और मक्ता/ जिन्दाबाद/

'जड़ें' कविता में सरोज कुमार का यह रूपक भी कितना मार्मिक है-

"मैं जितना दिख रहा हूँ/ बस उतना ही नहीं हूँ/ नीचे गहरे तक उतरे हैं/ मेरे पाँव/"

एक कवि जब तक नीचे गहरे तक नहीं उतरता तब तक ऐसी कविता भी नहीं उतर सकती क्योंकि एक मर्मभेदी, संवेदनशील कवि केवल शब्दों की सतह पर कविता नहीं करता वह तो शब्दों की गहनता में उतर कर काव्य की जड़ों तक पहुँच सकता है।

सरोज कुमार के अनुभव का फलक सम्पर्क-व्यापी और संवाद-व्यापी रहा है। वे समाज से जुड़ते हैं तो मनुष्य की सामाजिक नियति से साक्षात्कार करते हैं, वे राजनीतिक मुद्रा में सुख-दुख के संवेदन से जुड़ते हैं तो सपाट बयान तो देते हैं लेकिन बयानों में नैतिकता का वजन पैदा करके राजनीतिक यथार्थ और मनुष्य के दैन्य पर भी चिंतित होते हैं। यहीं तो, कवि चाहे यथार्थवादी हो या कलावादी, उसका मनुष्य बोध अधिक प्रबल होता है। सरोज कुमार का काव्य जहाँ आधुनिक चेतना का काव्य है वहीं आधुनिकता से ढहती मूल्य वृत्ति के प्रति क्षोभ का भी काव्य है। मनुष्य उनकी कविता का सबसे बड़ा रूपक है और उस मनुष्य के अन्दर का अर्थ जब वे खोजते हैं तो सामाजिकता, नैतिकता, कलात्मकता और आधुनिकता के प्रति मोह भंग के छंद बनने लगते हैं। कवि के पास उसकी सामग्री का सर्वाधिक नाजुक पहलू तो उसका संवेदन है जो मनुष्य, प्रकृति और स्मृति के द्वारा कविता में रूपायित होता है। वैसे काव्य-आलोचना के समकालीन उद्भटों की दृष्टि में ये कविताएँ अपने आंतरिक मर्म का शिल्प तो नहीं रच पातीं मगर यदि गहराई से पढ़ा जाए तो मर्म ढूँढने वाले यथार्थों के पंडित भी पाएँगे कि सरोज कुमार शब्दों का पाखण्ड नहीं करते बल्कि शब्दों में जो अर्थ-निवेश करते हैं - वह उनकी कविता का रूप विधान भी है, मर्म-विधान भी और काव्य विधान भी। यदि कुछ स्थूल ढंग से लिखी गई कविताओं को छोड़ दें तो शेष कविताओं से सरोज कुमार एक ऐसे कवि हैं जो बौद्धिकता का कृत्रिम चोला न ओढ़कर समय के परिवेश में जड़ों तक पहुँचने के लिए स्पंदित हैं। वे एक चेतनाशील कवि है जो अपने संपूर्ण आंतरिक संवेदन के साथ कविता में खालिस मनुष्य और मनुष्य में खालिस कविता रचते हैं। स

मो.9406523071

अकेलेपन की इंजीनियरिंग

सूर्यकांत नागर

खिड़कियाँ (उपन्यास)
लेखक : दामोदर खड़से
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन नई दिल्ली-2
मूल्य : 225 रूपए

हिन्दीसेवी वरिष्ठ साहित्यकार, चिंतक और अनुवादक डॉ. दामोदर खड़से हिन्दी-जगत की सुपरिचित शख्सियत हैं। मराठीभाषी होने के बावजूद उनका हिन्दी-प्रेम सर्वविदित है। हिन्दी के प्रति इतने आग्रही कि अन्य लेखक की मराठी में लिखी पुस्तक की भूमिका भी उन्होंने हिन्दी में लिखी। खड़से जी ने साहित्य की लगभग हर विधा में लिखा है । व्यंग्य-विधा में सीधे-सीधे चाहे न लिखा हो, पर सामाजिक-राजनीतिक अंतर्विरोधों के चलते व्यंग्य ने स्वतः ही उनकी रचनाओं में स्थान बना लिया। कोई भी प्रज्ञावान लेखक अपने समय के यथार्थ से कटकर नहीं रह सकता। खड़से जी की रचनाओं में यहाँ-वहाँ छितरी व्यंजनात्मक टिप्पणियाँ इसका प्रमाण हैं।

'खिड़कियाँ' दामोदर खड़से का चौथा उपन्यास है जो उन्होंने म.गाँधी अंतराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा की 'राइट इन रेसीडेंस' योजना के तहत लिखा। उपन्यास मुख्यतः मनुष्य-जीवन के एकांतिक क्षणों की जद्दोजहद और मनोविज्ञान को शिद्दत से रेखांकित करता है। व्यक्ति के जीवन में ऐसा समय आता है जब अकेला हो, वह अवसाद, उदासी और निराशा से घिर आता है। उम्र के अंतिम पड़ाव पर इस प्रकार के विषाद का अनुभव अधिक होता है। विशेषतः तब जब जीवन-साथी असमय ही साथ छोड़ गया हो । उपन्यास के नायक अरूण प्रकाश समझदार, शिक्षित, समर्पित पत्नी आस्था से बहुत प्यार करता था, परंतु पत्नी की असमय मृत्यु ने उसे तोड़ दिया। वे अपने में सिमट कर रह गए । अजीब-सी खामोशी छा गई। हर क्षण उन्हें आस्था की याद आती और बेचैन कर जाती । विरह में प्यार विस्तार पाता है। प्रेम की असली परीक्षा विछोह में होती है। कृष्ण के द्वारका चले जाने के बाद गोपियों की विरह-वेदना इसका साक्षात उदाहरण है। ऐसे में अरूण प्रकाश की बेटी निष्ठा और उसकी वजह से की गई अमेरिका की यात्रा, मीना व नगमा की दर्दभरी दास्तान और साक्षी के जीवन-संघर्ष और अकेलेपन ने उनकी दिमागी खिड़कियाँ खोलदीं और उन्मुक्त हो वे हालात के साथ सामंजस्य बैठाने लगे। इन माध्यमों से उनके जीवन में नई उमंग और उत्साह का संचार हुआ। इसमें एकांतिक क्षणों के चिंतन की भूमिका अहम रही। नवोन्मेष में मित्र सूर्यकांत और सेवाभावी अखिलका योगदान भी रहा। स्वयं के द्वारा संपादित साहित्यिक पत्रिका 'एकांत' ने भी उन्हें अंधेरे से बाहर आने में मदद की। जब व्यक्ति डूबकर अपनी रूचि का काम करता है तो उन क्षणों में आसपास के तमाम झाड़-झंखाड़ स्वतः ही धूल-घूसरित हो जाते हैं। यही नहीं, 'एकांत' में उन्होंने खालीपन को भरने विषयक प्रेरणास्पद सामग्री छापकर एक मुहीम-सी चला दी थी। इन से जुड़कर अरूण का जीवन-स्फूर्त हुआ और वे मन के एकांत को पार कर अंतर्मन के एकांत में पहुँचने में सफलहुए।

जब अरूण प्रकाश अमेरिका से भारत लौटने की इच्छा प्रकट करते हैं तो बेटी निष्ठा कैसी तो हो आती है। नम आँखों ओर रूंधे गले से कहती है 'पापा! कुछ दिन और रूक जाए न ।' विवाहित बेटियाँ चाहती हैं कि उनके घर आए पिता कुछ दिन और रूक जाएँ, कुछ दिन और। इस संदर्भ में कवि स्व. चंद्रकांत देवताले की मार्मिक काव्य-पंक्तियाँ बरबस याद आती हैं - 'दुनिया में सबसे कठिन है शायद/बेटी के घर से लौटना/ बेटी जिंद करती है/एक दिन और रूक जाओ न पापा/एक दिन...../सदियों से बेटियाँ रोकती होंगी पिता को/एक दिन और/और एक दिन डूब जाता होगा पिता का जहाज।'

अरूण प्रकाश का पूरा रूपांतरण तो साक्षी से उनकी भेंट के बाद ही हुआ। सुलझे विचारोंवाली, शिक्षित और कुशलगृहणी रही श्रद्धा 'एकांत' में छपी अपनी कविताओं के माध्यम से अरूण के संपर्क में आई जो जल्दी ही निकटता में तब्दीलहो गई। श्रद्धा भी कमोबेश उसी तरह के एकांतवास से पीड़ित थी, जिससे अरूण प्रकाश भी ग्रस्त थे। सास, पिता और पति की मृत्यु के पश्चात् विषाद ने उसे अकेला कर दिया । दो प्रौढ़व्यक्तियों की आपसी समझ, साझी पीड़ा और सहानुभूति उन दोनों को मानसिक रूप से करीब ले आई। यह आभासी, सात्विक प्रेम का श्रेष्ठ उदाहरण है। वहाँ देह नहीं, संवेदना प्रमुख थी। दोनों की मुलाकात ने उनमें सुरक्षा का भाव भरा। यहाँ लेखक की यह उक्ति सटीक सिद्ध होती है कि उम्र के साथ जिंदगी खत्म नहीं होती। जिंदगी के साथ उम्र खत्म होती है। हताशा आपको कुछ नहीं देती। जीवन और मृत्यु के विषय में व्यक्त कथन विचारोत्तेजक हैं- 'सवालयह नहीं है कि मृत्यु के बाद जीवन मौजूद है या नहीं ? असली सवालयह है कि आप मौत से पहले जीवित हैं या नहीं ?' यदि आप मौत से पहले ही मर गए तो जीवन में रह क्या जाएगा! महत्वपूर्ण यह है कि आप जानें कि जीवन को आप किस रूप में ग्रहण कर रहे है ! मुख्य मुद्दे के साथ-साथ उपन्यासकार ने अमेरिकी और भारतीय संस्कृति के मूलभूत अंतर को तलाशने के अवसर भी जुटा लिए । पाश्चात्य जीवन-शैली और भारतीय जीवन-शैली की भिन्नता को लेखक ने शिद्दत से रेखांकित किया है। भारत से गए एक वयस्क व्यक्ति के लिए यह हैरत में डालने वाली बात है कि कीर्तन और डिस्को एक ही स्थान पर हो रहे हैं । कि भारत में पचास रूपए में मिलने वाले डोसे का अमेरिकी मूल्य सात सौ रूपए है। वहाँ बच्चे का रोना या शोर मचाना बर्दाश्त नहीं किया जाता। उन्हें 'क्रेश' में डालना होता है। तथाकथित समृद्ध देश में भी लोग अपने अकेलेपन से त्रस्त हैं और उसे दूर करने के लिए यहाँ-वहाँ संग-साथ ढूँढते रहते हैं। खड़से जी सामाजिक सरोकारों के प्रति भी सजग हैं। समकालीन यथार्थ के जज्बे से सराबोर। जहाँ भी संभव हुआ, युगीन राजनीतिक हलचलों की अनुगूँज हमें उनकी कृति में सुनाई देती है। उन्होंने सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक विसंगतियों को उजागर किया है - चाहे सवालस ॥ या चुनावी राजनीति का हो, बढ़ती मूल्यहीनता का हो, पूँजी के वर्चस्व का हो, लोकतांत्रिक मर्यादाओं को हो या मिथ्याचार का हो। यह कैसी विसंगति है कि अमेरिका में रह रहे भारतीयों की जरूरतों की चीजों की पूर्ति चीन में निर्मित वस्तुओं से हो रही है जबकि भारतीयों की आवश्यकता पूर्ति भारत में निर्मित उपकरणों के माध्यम से होनी चाहिए। कैसी विडम्बना कि चीन ने न केवलभारत में बल्कि विश्वके अन्य मुल्कों में भी अपना आर्थिक दबदबा बना रखा है। उपन्यास का एक रोचक पक्ष है, उसमें इन्दौर और मित्र सूर्यकांत की मौजूदगी। पुणे के स्थायी वासी होने के बावजूद लगता है, खड़से जी का इंदौर से गहरा जुड़ाव रहा है। इसीलिए पग-पग पर इन्दौर छाया हुआ है।

दरअसल'खिड़कियाँ' अकेलेपन के मनोविज्ञान की कथा है। स्मृतियों की भी। लगता है, खड़से जी का स्मृति-कोश बहुत समृद्ध है। उनका भाव-संसार विस्तृत है। एक बड़े सत्य के अन्वेषण की विलक्षण कथा है यह। उपन्यास में ऐसा बहुत कुछ है जो पाठक को सम्मोहित करता है। रचना का काम विचारों, मानसिक दुर्बलताओं और दूषित परम्पराओं का परिमार्जन करना है और 'खिड़कियाँ' यह काम बदस्तूर करता है । स

मोबाइल - 9893810050

एक नये कथा-राग का सुंदर आलाप

जीवन सिंह ठाकुर

अभी तक इतिहास यही रहा है कि आकाशवाणी में जो लेखक गया, अधिकांशतः उसकी सृजनात्मकता 'स्वाहा' हो जाती है। ऐसे बहुतेरे उदाहरण हैं, जो लेखक धूमकेतु की तरह, साहित्य के 'स्पेस' में दमकते दिखे, लेकिन वे फिर आकाशवाणी के 'ब्लैक होल' में गुम हो गये। क्योंकि आकाशवाणी भी व्यवस्था का एक सुरसा मुख ही है। आरम्भ में तो, जब नेहरू ने कलाकार-लेखकों-कवियों को आकाशवाणी में जगह देने का आग्रह किया तो कई बड़े-बड़े लेखक कलाकार उसमें आये, लेकिन जल्द ही उन्हें इस बात का अहसास हो गया कि यह तो 'मौत का कुँआ है, ? और लोग उससे बाहर निकल आये। कमलेश्वर भी दूरदर्शन में स्क्रिप्ट राइटर थे और इस्तीफा देकर 'बहिर्गमन' कर गये। जो लेखक, उसमें काम करते रहे, वे एक 'अवरूद्ध' नदी बन गये। जैसे किसी ने नदी पर बाँध, बाँध दिया हो। कुछ प्रतिभाशाली लोग, जो तेज-तर्रार बनते और दिखते थे, वे 'क्लास-वन' बनने की चूहा दौड़ में फँस कर, वहाँ से नहीं निकल पाये। ऐसा कम हुआ कि 'आकाशवाणी' में जाने के बाद को लेखक या कवि बना हो। लीलाधर मंडलो भर ऐसे दिखते हैं, जो 'आकाशवाणी' के बाद, उसके गुबार में से ही ऊपर उठे और अपनी एक मुकम्मल कवि की 'प्रतिमा' बन पाये। प्रभु जोशी, जो शरद जोशी के बाद धर्मयुग में सबसे अधिक छपते रहे - उन्होंने, आकाशवाणी 1976 में ज्वाइन की। 1977 में आखिरी कहानी लिखी। यह एक विडम्बना का उदाहरण। लेकिन, ऐसा पहली बार हो रहा है कि आकाशवाणी से को कहानीकार, निकल कर आया है।

ममता सिंह, ऐसी ही युवा लेखिका हैं, जो अपनी प्राथमिक छवि विविध भारती में काम करने वाले उद्घोषक की रखती हैं, लेकिन उस छवि से बड़ी 'पहचान', वह कहानी में बना रही हैं। उनका सद्य प्रकाशित पहला कहानी संग्रह, राजपाल प्रकाशन से आया है। 'राग-मारवा'। हमारे यहाँ कथा-कहानी में संगीत की दुनिया से आने वाले कथा-पात्र कम ही दिखते हैं। 'राग-मारवा' संग्रह की पहली कथा-रचना है, जिसमें लेखिका ने एक शास्त्रीय-संगीत की गायिका के जीवन के उत्तरार्ध की पीड़ा और प्रश्नों को खड़ी करने वाली मर्मस्पर्शी कहानी लिखी है। वह खुद भी संगीत का ज्ञान रखती है। मध्य वित्तीय परिवार से आने वाली कुसुम जिज्जी के भीतर गायन की प्रतिभा है, लेकिन वह 'सही वक्त' में अपनी आकांक्षाओं के आकाश में बहुत ऊँची उड़ान नहीं भर पाई। क्योंकि मध्यवर्गीय आर्थिक विषमता और पारिवारिकता ने, उसे पंख फैलाने को सीमित आकाश ही दिया - लेकिन, अब जब वह उम्र के उत्तरार्द्ध में फिर से सक्रिय हैं तो घर में, उम्र रशीदा उस गायिका का अर्थ, सिर्फ एक, ए. टी. एम. मशीन की तरह है। गाती है, या कार्यक्रम देती है तो घर मे बेटे-बहू के उपभोग के लिये पैसा आता है। यह किसी भी कलाकार का दारूण दुःख है कि उसको उसकी कला नहीं, केवल से कमाई करने के कारण सम्मान दिया जा रहा है। दूसरे क्रम की कहानी, नये विषय वस्तु की है। हम जानते हैं कि विज्ञान की नई तकनीक ने 'बांझ' के लांछन को पोंछने का काम किया है। संग्रह की दूसरी कहानी, 'गुलाबी दुपट्टे वाली लड़की' , एक नेपाली लड़की की विडम्बना-कथा है, जो लेखिका के घर में, घर में

राग-मारवा : कहानी संग्रह
लेखिका : ममता सिंह
प्रकाशक - राजपाल
प्रकाशन, नईदिल्ली

काम करने वाली 'मेड-सर्वेन्ट' बन कर आ है - और, वह महानगर, में इसलिए आई है कि वह आ.वी. एफ. की तकनीक से माँ बन सके। वह निहायत ही मासूम है, जो नेपाली गाँव की लड़की है। वह चालीस हजार की फीस जुटाकर डॉक्टर को देगी और वह माँ होने का गौरव हासिल करके गाँव लौट जायेगी। लेखिका फ्रीलांस पत्रकार है और धीरे-धीरे वह अपनी मानवीय संवेदना से भरकर, उसे एक निःसन्तान स्त्री के दुःख से मुक्ति के रास्ते पर देखती है। 'परखनली से शिशु की खबर' जब भारत में आई थी, तब से अभी तक इस विषय पर खबरें भर थीं - इस विषय पर मुझे कोई सुन्दर कहानी पहली बार पढ़ने में आई। बहरहाल, वह उम्मीद से भरती नेपाली लड़की की कहानी को काफी सावधानी से लिखती हैं। उसके 'भ्रम' एक दिन टूट जाते हैं, जब वह देखती है कि उसने 'कंसीव' नहीं किया, बल्कि वह फिर से 'मेन्स्ट्रल-पीरियड' में आ जाती है। इसके बाद, एक दिन वह नेपाली ग्राम कन्या नौकरी छोड़ देती है। लेखिका उसे लाशने की कोशिश करती भी है, लेकिन वह उसे कहीं नहीं मिलती। एक लम्बे अन्तराल के बाद, लेखिका उसी डॉक्टर शेट्टी गायकनोलॉजिस्ट के क्लीनिक पर, किसी पत्रिका के लिये एक अखबारी स्टोरी करने जाती है। किसी अखबार के लिए, तो उसे वहाँ वही ग्रामीण-नेपाली कन्या गिन्नी दिख जाती है। लेकिन, अब गिन्नी गाँव की शर्मीली और चुप रहने वाली लड़की नहीं है। वह बातूनी हो चुकी है। चैटर-बॉक्स में बदल गई है। वह खुश है, पैसा भी मिल रहा है, क्योंकि उसने अपने गर्भाशय के अण्डे बेचना शुरू कर दिया है। वह वेण्डिग-मशीन बन गई है। किराये की कोख। अब पति भी शुक्राणु बेचता है और वह अण्डाणु। लेखिका, अन्त में, उसको मन ही मन सराहती है कि गिन्नी का कद उससे भी बड़ा हो गया है कि वह किसी और स्त्री की सूनी गोद को भरने का काम कर रही है। कहानी इस अफसोस पर खत्म होती है कि ठीक है, वह खुद दो लड़कियों की माँ बन गई है। और अपने अण्डाणु से दूसरी स्त्री को भी 'बांझ' की पीड़ा और लांछन से मुक्ति दे रही है - लेकिन, आखिर कब तक' क्योंकि, वृक्ष भी एक उम्र ही तक फल देने लायक रह पाता है। अच्छा है कि कहानी प्रश्न खड़ा करके समाप्त हो जाती है।

कहानी संग्रह में, एक बच्चे की कहानी है, शीर्षक हैं - 'फैमिली ट्री'। कहानी, महानगरीय, एकल परिवार में पलते बच्चे की निर्विकार मासूमियत से हर लाइन भरी हुई है। यह कहानी, लेखिका सिर्फ महानगर में होकर ही लिख पायी। एक भोला बच्चा, अपनी मम्मी और पापा की अनुपस्थिति में अपने ही गुनताड़े में कहाँ-कहाँ एक अनाम यातना के बीच जीता है। बच्चे का घर में इकलौती सन्तान होने से अकेलापन है, दूसरा कोई भाई-बहन नहीं। महानगर में बेबी सिंटिंग का, वह व्यावसायिक परिवेश, जहाँ स्नेह और ममता नहीं, सिर्फ चौकीदारी। वहाँ उसे, क्रच की संचालिका काकी, खेलने नहीं देती। वह उसे डाँटकर सुला देती है। कहानी में एक दिन अचानक मुम्बई की धारासार बारिश का दृष्य आता है। पूरी लोकल्स टेन ठप्प। आवागमन बन्द। सड़कों पर पानी ही पानी। संचालिका से बच्चे मनु को सूचना मिलती है - 'तेरी मम्मा आज तुझे लेने नहीं आयेगी। पाऊस पड़ला, तरी येणार नाहिं। पटरियों पर पानी भर गया है। तू आज इधर ही रहेगा।' बाल मनोविज्ञान को कहानी में बहुत कुशलता के साथ चित्रित किया गया है। वह वहीं रात रूकने को विवश। लेकिन, वह रात में धीरे से दरवाजा खोलकर, क्रच से बाहर। सारी रात बच्चा, उस बारिश और अंधेरे में काटता है। संचालिका सुबह देखती है कि बच्चा नदारद। जब कहानी की श्रेया, जो मनु की माँ है, को क्रच की संचालिका का फोन मिलता है कि मनु गायब है।

उसके लिए यह प्राणान्तक सूचना। वह थाने में बच्चे की गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज कराती है। परिचितों को व्हाटऐप्स, फोन सबसे सूचना, लेकिन मनु का कोई पता नहीं। पूरी बिल्डिंग के लोग भी ढूंढने में लगे हैं। माँ और पिता की पीड़ा और उसके उफान का बखान, बहुत ही मर्मस्पर्शी है, जो ममता सिंह को, भविष्य की एक बहुत संभावना वाली लेखिका बनने के संकेत देता है। सारी, मार तमाम हायतौबा, और बरदाश्त बाहर होती पीड़ा के बीच, अंत में मनु अकेला, बिल्डिंग के जीने में ठिठुरता बरामद हो जाता है। कहानी एकदम सुखान्त रचती है। निश्चय ही यह 'ममत्व' के सैकड़ों दृश्यों और चित्रों से भरी एक मार्मिक कथा है। विव्हल और विचलित करने वाली अद्भुत कहानी है। ''आवाज में पड़ गई दरारें। यह कहानी शारव और सनोवर के बीच प्रेम की कहानी है। कस्बे की लड़की, शारव के आकर्षण में माया नगरी मुम्बई आ जाती है। शारव मुम्बई में एक उभरता हुआ कोरियोग्राफर है। आज के सूचना के विस्फोट और संचार की सहजता के चलते, प्रेम के परवान चढ़ने को लेखिका ने बहुत ही रोचक अंदाज में लिखा है। इसमें लेखिका ने 'लिव-इन' रिलेशनशिप को विषय बनाया है, जो बहुत अच्छे से चित्रित भी किया है - लेकिन, सनोवर देखती है कि शारव तो मीनाक्षी नाम की नृत्य करने वाली लड़की से भी आसक्त है। वह तुलना और परख भी करती है कि उसका स्थान शारब के जीवन में कहाँ स्थित है। लेकिन, धीरे-धीरे वह जान जाती है कि वह प्रेम बंधन के नाम पर छली जा रही है और वह सिर्फ एक छद्म-प्रेम को जी रही है। इसी बीच उसका लंदन के एक रेडियो चैनल के लिए चयन होता है। वह उस नौकरी के लिये लन्दन जाने के लिये तैयार हो जाती है। शारव उसे लालच देता है कि वह उसके जीवन में ही रहे। वे संसार बसायेंगे। लंदन जाना ठीक नहीं - लेकिन, अंत में कथा नायिका एक आत्म-सजग स्त्री की तरह, आसक्ति से छलांग लगाकर, एक 'सेल्फ एश्योर्ड' स्त्री के आत्मविश्वास से भरकर, एक स्वतन्त्रचेता स्त्री की तरह सामने आती है और शारव के फोन नम्बर को हमेशा के लिए ब्लॉक कर देती है। कहानी का अन्त, स्त्री के निर्णय की क्षमता को रेखांकित करती है।   यह एक उत्तर-आधुनिक स्त्री की प्रतिमांकन की सुन्दर कहानी है। इसमें 'पठनीयता' का एक अटूट अन्तर-प्रवाह है। यह कहानी, लेखकीय कौशल के लिए भी याद की जानी चाहिए। 'सुरम' ? शीर्षक से कहानी भी स्त्री के, पुरूष से मोह भंग की कहानी है, जिसमें नायक कोरियोग्राफर नहीं, रेडियो जॉकी है जिसकी आवाज के ग्लैमर के कारण, प्रेम का ताना बाना बुना गया है। प्रज्ञा, कथा की पात्र है। जो, रेडियो जॉकी से, उसकी कार्यक्रम के प्रस्तुत करने के रूमानी अंदाज से प्रेम करते हुए, धीरे-धीरे उसे पाने का स्वप्न देखती है - अंत में, जब वह रेडियो जॉकी से मिलती है तो पता चलता है कि वह तो पहले से ही विवाहित है। उसको धक्का लगता है। प्रेम का भ्रम टूट जाता है। उसे लगता है कि वह भी उसके लाखों श्रोताओं में से एक श्रोता थी, जिसमें उसको लेकर प्रेम की मिथ्या दीवानगी भर गई थी। एक इमोशनल झटका देकर कहानी खत्म होती है। कहानी का निर्वाह, ममता सिंह की सधी कलम का प्रमाण देता है। लेकिन संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण दो कहानी हैं। जो ममता सिंह के लेखन के प्रति आश्वस्त करती हैं कि वे आगे आने वाली कथा पीढ़ी का एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर बनकर अपना स्थान सुरक्षित कर सकेगी।

एक कहानी है 'पानी पे लिखा खामोश अफसाना', तथा दूसरी कहानी है - 'आखिरी काण्ट्रेक्ट'। दोनों ही कहानियाँ लेखन की परिपक्वता और लेखकीय दृष्टि के 'सामाजिक' पर्सपैक्टिव को प्रस्तुत करती है। 'पानी पे लिखा, खामोश अफसाना' कहानी का आरंभ, नायक नायिका के प्रेम के कुछ बहुत रोचक बखान से भरा है। यह शादी के पूर्व की कोर्टशिप का दौर है, जो एक गहरे दाम्पत्य जीवन की उम्मीद से भरा है। लेकिन, नायिका अपने बचपन के भयों से घिरी रही आयी है। माँ और पिता के बीच, किसी तीसरे की अमूर्त उपस्थिति थी, जिसे वह अपनी कच्ची उम्र में जान ही नहीं पाई। लेकिन, उसके चलते, एक दिन माँ 'आत्महत्या' का रास्ता चुन लेती है। बड़ी होकर, उसे वह अमूर्त भय छोड़ता नहीं। उसके अंदर 'दर्श' को लेकर भी वही संदेह उग आता है जो कि उसको बहुत मानदारी के साथ प्रेम करता है। लेकिन, वह भय अंत में उसे दर्श से हुए प्रेम को दाम्पत्य-जीवन में बदलने से रोक देता है। बचपन का वह दुःस्वप्न सा समय, उसे सहज नहीं रहने देता और भविष्य में संदेह की बारूद भरता चलता है। कहानी, एक विस्फोट की तरह अंत तक पहुँचती है। क्योंकि नायिका को लगता है कि कहीं न कहीं, किसी न किसी दिन माँ के जीवन का सच, उसके जीवन का सच भी बन सकता है। उसके अंदर ढेर सारा घनमथन है। और लगता है कि कहानी का ध्येय भी 'स्त्री' मन के भीतर रेंगते भय के वैराट्य की कहानी है। अंत की कहानी 'आखिरी काण्ट्रेक्ट' की विषय-वस्तु हमारे समाज के भीतर की सांप्रदायिक सोच की विद्रूपता को प्रस्तुत करती है। नायिका हिन्दू है, लेकिन उसने मुस्लिम लड़के से शादी कर ली है। बहरहाल, खासकर बाबरी मस्जिद के बाद, हमारा समाज फिर नये ढंग से हिन्दू मुस्लिम में बँट गया है। और, दुर्भाग्यवश महानगर और गाँव, दोनों ही एक समान रूप से इस दारूण विभीषिका से अभिशप्त है। इनको महानगर में रहने को कोई घर देने के लिए तैयार नहीं है, क्योंकि पति के नाम से घर खरीदा जाना है और वह एक मुस्लिम नाम है।

कुल मिलाकर, 'राग-मारवा' हालांकि लेखिका का प्रथम कहानी संग्रह है। और एक नये लेखक के प्रथम संग्रह में इतनी सारी उत्कृष्ट कहानी का होना, ममता सिंह को एक महत्वपूर्ण युवा लेखिका की तरह, प्रतिष्ठित करता है। यह प्रतिभा के राग का आलाप है। स

40-ए अलकापुरी, देवास, म.प्र.

सरकारी तंत्र को समझने का मंत्र : तंत्र कथा

अरूण अर्णव खरे

साहित्य जगत में कुमार सुरेश का नाम एक कवि के रूप में किसी परिचय का मोहताज नहीं है लेकिन जब उनका पहला व्यंग्य उपन्यास प्रकाशित हुआ तो बहुतों को आश्चर्य हुआ। कारण -- एक तो व्यंग्य उपन्यास बहुत कम लिखे गए हैं और दूसरा इनको लिखना तथा लगातार व्यंग्य को साधते चलना आसान काम नहीं है। यही कारण है कि बहुत से स्थापित व्यंग्यकारों ने भी व्यंग्य उपन्यास नहीं लिखे हैं। जब किसी कवि का व्यंग्य उपन्यास सामने आए तो आश्चर्य होना स्वाभाविक है और उसके सामने कठिन-कसौटी पर कसे जाने की प्रक्रिया से गुजर कर खरा होकर निकलने की चुनौती भी है।

व्यंग्य के क्षेत्र में श्री कुमार सुरेश को नवागंतुक कहना उनके साथ अन्याय ही कहलाएगा। उनके अन्दर एक व्यंग्यकार बसता है इसे बहुत पहले वह सिद्ध कर चुके हैं। नब्बे के दशक में उनके व्यंग्य नई दुनिया के अधबीच कॉलम में प्रकाशित होते रहे हैं जो स्वयँ उनके एक काबिल व्यंग्यकार होने के सबूत हैं।

तन्त्र कथा की कथावस्तु एक सरकारी कार्यालय के काम करने के तौर-तरीकों पर केंद्रित है जिसमें भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, बेइमानी, कामचोरी, चापलूसी, शोषण, पद-लोलुपता और मंत्री-विधायकों के अनैतिक हस्तक्षेप सरीखी तमाम विसंगतियों की व्यापक खोज-खबर ली गई है। श्री लाल शुक्ल के "राग दरबारी" को व्यंग्य उपन्यासों में मापदण्ड माना जाता है। सुरेश कांत का "ब से बैंक" और ज्ञान चतुर्वेदी का "नरकयात्रा" अन्य चर्चित व्यंग्य उपन्यास हैं। सरकारी कामकाज के तौर-तरीकों पर पिछले कुछ वर्षों में अनेक उपन्यास आए हैं जिनमें प्रमुख हैं मलय जैन का "ढाक के तीन पात", जवाहर चौधरी का "उच्च शिक्षा का अण्डर वर्ल्ड", अरविंद तिवारी का "हेड आफिस के गिरगिट" तथा शशिकांत सिंह शशि का? 'दीमक" लेकिन इन सभी का ट्रीटमेंट अलग-अलग है। तन्त्र कथा में एक शासकीय विभाग की कार्य पद्धति की परत दर परत पड़ताल करने के साथ ही जिले के कलेक्टर और एसडीएम कार्यालयों के कार्य निष्पादन के तरीकों में आ गई सड़न पर प्रकाश डाला गया है।सरकारी तंत्र पर लिखे गए दूसरे उपन्यासों से तंत्र कथा इस मामले में अलग है कि इसमें एक कार्यालय,जिला प्रशासन तथा विभाग के मुख्यालय को विषय वस्तु बनाते हुए अधिकारियों तथा कर्मचारिओं के आचार, विचार, व्यवहार तथा कार्य की परिस्थितियों पर गहरी व्यंग्यात्मक नज़र डाली गई है।

164 पृष्ठ के इस उपन्यास की कहानी के केन्द्र में उपायुक्त कोमल जोशी हैं। मुख्यालय तक गहरी पैठ है उनकी, जिले के कलेक्टर के साथ उठना-बैठना है और प्रताप सिंह भूतपूर्व एमएलए के मुख्य सलाहकार हैं। एक रखैल भी है उनकी। वह ऑफिस के नीरस कामों की जगह राजनीतिक जमावट पर अधिक ध्यान लगाते हैं इसीलिए एक कमाऊ जगह पर तीन सालों से जमे हुए हैं। अधिक से अधिक धन कमाना उनका

उपन्यासकार कुमार सुरेश
प्रकाशक - लोकोदय प्रकाशन,
मूल्य 200/- (पेपरबैक)

उद्देश्य है इसके पीछे उनका बचपन तंगहाली में गुजरना मुख्य वजह है। उनके पिता शिक्षक थे। शिक्षक पिता की लाचारी पर तंज कसते हुए सुरेश जी लिखते हैं - "उनको इतनी तनख्वाह जरूर मिलती थी कि जोशी जी और उनके तीन भाई बहिन ठीक से जी तो नहीं पाए लेकिन मरे भी नहीं।"

उपन्यास की कहानी में प्रवाह के साथ-साथ पठनीयता और रोचकता अंत तक बनी रहती है। अनेक घटनाओं के माध्यम से सुरेश जी ने कथानक को सजीव बनाए रखा है। मुख्यालय में पदस्थ अपर उपायुक्त मनमोहन भसीन जब दौरे पर आते हैं और पूछते हैं - "सारी तैयारी है न" तो प्रतिउत्तर में जोशी जी कहते हैं - "सारे रजिस्टर तैयार हैं। निर्देश अनुसार टीप भी टाइप करा कर रखी है। आप उस पर एक नजर डाल लीजिए बस।" दोनों के बीच की इस बातचीत से सरकारी दौरों की निरर्थकता जाहिर होती है - सब कुछ पूर्व नियोजित है। हद तो तब हो जाती है जब भसीन जी देखने लायक स्थानों के बारे में पूछते हैं और जोशी जी कहते हैं - "यहाँ से बीस किलोमीटर दूर देवी जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। सबसे पहले वहाँ चलते हैं। रास्ते में गुप्ता का रेमण्ड का शोरूम है -- कल तक सूट सिल भी जाएगा।" भसीन जोशी के मैनेजमेन्ट की तारीफ करते हैं।वैसे भसीन जी को भूलने की भी बीमारी है। जब वह दौरों पर जाते हैं तो विशेष रूप से इनरवियर, टावेल और टूथब्रश भूल ही जाते हैं। चश्मा भूल जाते हैं -- कोट भूल जाते हैं -- घर का बिजली बिल भरना भूल जाते हैं। ये कहने की जरूरत नहीं कि उनकी यह भूल मातहत अधिकारियों की जेब हलकी करती रहती है।

कहानी में एक पात्र सहायक आयुक्त मित्रा जी हैं। ऑफिसों की शास्वत परम्परानुसार उपायुक्त के साथ उनके सम्बन्ध सदा तनावग्रस्त लेकिन नियंत्रण में रहते थे। एक अन्य महत्वपूर्ण पात्र अत्रे बाबू हैं जो आफिस टाइम में कुछ काम नहीं करते थे लेकिन देर रात तक रूक कर काम निपटाते थे जिससे उनकी छवि बहुत काम करनेवाले की बनी हुई थी। वे उपायुक्त जोशी और उन लोगों के बीच की कड़ी भी थे जो काम निकलवाने के लिए कुछ धन समर्पित करना चाहते थे।

कहानी कुछ और पात्रों मसलन एसडीएम तोमर, मिस रागिनी, दीपक आहूजा, विनय प्रकाश, माथुर, कामता प्रसाद आदि और घटनाओं के सहारे आगे बढ़ती है। अन्त आते-आते जोशी के लिए स्थितियाँ कठिन होती जाती हैं, इतनी कठिन कि उनके विरोधियों ने जोशी हटाओ समिति बना ली और उनको निलम्बित करवा कर ही दम लिया। निलम्बन अवधि में जोशी जी को मुख्यालय में अटैच कर दिया गया। इसके बाद उनकी मुसीबतें बढ़ती ही चली गईं। उनके सरपरस्त प्रताप सिंह चुनाव हार गए। सरकार बदल ग । कार्यालय में जोशी जी का रूतबा जाता रहा। फिर एक दिन निलम्बित रहते हुए जोशी जी रिटायर हो गए। किसी भी पुराने साथी कर्मचारी ने उन्हें विदा करने बाहर तक आने की जरूरत नहीं समझी। चूँकि जोशी जी निलम्बित रहते हुए रिटायर हुए थे अतएव उनकी ग्रेच्यूटी सहित अन्य लाभ भी रूक गए केवल आंशिक पेंशन से ही उन्हें अब जीवन यापन करना था।

जोशी जी अपने केस के सिलसिले में कोर्ट और आफिस के चक्कर लगाते रहते हैं लेकिन कोई उनकी मदद के लिए आगे नहीं आता। उल्टा उन्हें ये सुनना पड़ता है कि "रिटायर होने के बाद अफसर और चपरासी एक समान हो जाते हैं। फ्यूज बल्ब सभी एक से, चाहे सौ वाट का रहा हो या जीरो का।" धीरे-धीरे जोशी जी को बीमारियाँ घेरने लगती हैं।

पुस्तक का अन्त लेखक ने अत्यन्त मार्मिकता के साथ किया है जब वह लिखते हैं कि - "रिटायरमेंट के बाद जोशी जी वापस समाज में समायोजित होने में असफल रहे। अकेलेपन और उपेक्षा ने उन्हें ऐसा तोड़ा कि धीरे-धीरे उनका मानसिक संतुलन कमजोर पड़ गया। आखिरी समाचार मिलने तक उनके विरूद्ध चल रहे आपराधिक प्रकरण खत्म नहीं हो पाये थे। एक दिन किसी ने विभाग के मुख्यालय में संक्षिप्त में यह खबर बताई -- आज सुबह जोशी जी नहीं रहे हैं। सबके पास अपने जरूरी काम थे। किसी ने जोशी जी को अन्तिम विदा देने के लिए जाने की इच्छा प्रकट नहीं की। मुख्यालय में न कुछ देर के लिए काम रोका गया न दो मिनट का मौन ही धारण किया गया।" समग्र रूप में लेखक ने सरकारी नौकरी की विडम्बनाओं का जीवन्त खाका खींचा है। कुछ सहायक पात्रों के चरित्र चित्रण को उभारने की जरूरत थी लेकिन इससे उपन्यास की पठनीयता में कमीं नहीं आती। भाषा सरस और सम्वाद प्रभावी हैं। प्रसंगवक्ता में लेखकीय कौशल का कमाल देखने को मिलता है। कुमार सुरेश का यह व्यंग्य उपन्यास पहले से मौजूद व्यंग्य उपन्यासों के बीच सम्मान के साथ अपना स्थान बनाने में सफल हुआ है। व्यंग्य उपन्यासों के बारे में कोई भी चर्चा इसके बिना अपूर्ण मानी जाएगी । मेरी शुभकामनाएँ। स

डी-1/35 दानिश नगर
होशंगाबाद रोड, भोपाल (म0प्र0) 462 026
मो. 99939 74799

सूक्ष्म प्रेक्षण व कोमलसंवेदन की कहानियाँ

सुरेश उपाध्याय

कथाकार व उपन्यासकार सुश्री कविता वर्मा का कहानी संग्रह 'कछु अकथ कहानी' हालही में कलमकार मंच, जयपुर ने प्रकाशित किया है। इसके पूर्व उनका एक कहानी संग्रह 'परछाइयों के उजाले' व एक उपन्यास छूटी गलियाँ प्रकाशित हो चुका है।

कछु अकथ कहानी (कहानी संग्रह)
कविता वर्मा
प्रकाशक : कलमकार मंच, जयपुर-3020198
मूल्य रू.150/-

इस संग्रह मे कुल15 कहानियाँ हैं जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हु हैं। कहानियों की अनुसूची पढते ही कबीर,मीरा, फैज अहमद फैज, दुष्यंतकुमार जैसे हमारे मास्टर रचनाकार सहज ही याद आते हैं।

प्रकृति और उसके सदिर्य का अद्भुत चित्रण करती, उसकी महत्ता प्रतिपादित करती ये कहानियाँ स्त्री की गरिमा, सम्मान,स्वतंत्रता और छोटी-छोटी आशा / आकांक्षा / अभिलाषा को स्वर देती हैं। पात्रों के परिवेश का बारीक विश्लेषण करते हुए स्त्री मन की कुंठा व विद्रोह के भाव को उभारती कहानियाँ सामाजिक-नैतिक मूल्यों का निर्वाह भी करती हैं।

आदिवासी जीवन के सुख-दुख, आशा-निराशा, अधिकार-कर्तव्य, संघर्ष, जीजिविषा, परम्परा से यह कहानियाँ परिचय कराती हैं तो साम्प्रदायिक विद्वेष की खाइयों की हमारे समय व समाज की विसंगतियो के बरक्स गंगा-जमनी तहजीब से रूबरू भी कराती हैं।

कहानियों की भाषा सरल व सहज है तो यथास्थान पंजाबी, भीली आदि आँचलिक बोलियों का प्रयोग उसके प्रभाव को सघन करता है। छोटी-छोटी इन कहानियों के माध्यम से कथाकार ने हमारे समय व समाज की विसंगतियों को उभार देते हुए पात्रों का गहन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

कथावस्तु, परिवेश व प्रकृति का सुंदर चित्रण, सहज-सरलभाषा व बोलियों का प्रयोग, पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण,सामाजिक-नैतिक मूल्यों की स्थापना पाठको को बांधे रखने की क्षमता रखती है।

"दरख्तो के साये में धूप" में मध्यमवर्गीय परिवार की स्त्री को अपनी छोटी सी आस, खुद ड्राइव कर रश्मि से मिलने जाने की इच्छा व्यक्त करने के लिए भी माहौल बनाना पडता है और बच्चों सहित कोई भी इसके लिए तैयार नहीं होता है। अंततः जब सब सो रहे हैं सुबह गाडी की आवाज सुन निखिल खिडकी से बाहर झांकता है और नायिका का एक गरिमामय व प्रतीकात्मक प्रतिरोध इस कहानी मे स्पष्ट झलकता है।

"बहुरी अकेला" में महिला के एकाकीपन का मनोविश्लेषण है तथा एक सहयात्री से जुडाव व बातचीत इस स्तर तक पहुँचती है कि दृ "तुम न होते तो ...." . कोमलसंवेदन की इस कहानी मे 4दिन की धर्मदर्शन यात्रा के अंत मे विदा होने तक उनके जीवन में क्या परिवर्तन होता है क्या है ऐसी धार्मिक यात्राओं का उददेश्य यह इस कहानी में बिना किसी उपदेश के बताया गया है।

"कुछ नही कुछ भी तो नहीं" में हमारी परम्परागत अवधारणा स्त्री के लिए पेट भर खाना, तन भर कपडा और संतान सुख ही सबसे बडा सुख है, इससे ज्यादा की चाह क्या करना ? 'के बरक्स इस झूठी दुनिया की उपेक्षा, निराशा से बचने के लिए स्त्री ने अपनी एक अलग' 'असली दुनिया' रची है, जिसमें वह सबसे छुपकर कभी-कभी एकांत मे प्रवेश करती है। "मोको कहाँ ढूंढे" में बढते शहरीकरण, घटती कृषि भूमि / पेड / पक्षी, नदी। पर्यावरण, कोलाहल, धर्म के व्यवसायीकरण, ध्यान के ढोंग के प्रति चिंता है तो बुजुर्गो की सीख /

समझाइश के प्रति नकारात्मक भाव का चित्रण है।

''कछु अकथ कहानी'' में आदिवासी जीवन के संघर्ष, रोजगार के लिए पलायन व घर-घर नर्मदा पहुँचने के साथ घर पर खाने-कमाने के जतन की सरकार से अपेक्षा के साथ नर्मदा घाटी के सदिर्य का चित्रण है।

''दाग-दाग उजाला ''स्त्री-पुरूष की दोस्ती पर संदेह के कोहरे और पारिवारिक अलगाव को दर्शाती कहानी का अंत मित्रता की गरिमा को प्रतिपादित करते हुए होता है।

''दिवस गंध'' गुरूग्रंथ साहिब लेकर जाते हुए ग्रंथियो से पुलिस की मुठभेड, गुरूग्रन्थ साहिब का अपमान, प्रतिक्रिया मे भडके बवालऔर पुलिस द्वारा निर्दोष व मासूम बच्चों को लाठी से पीटने के दृष्य बर्बरता व अमानवीयता को रेखांकित करते हैं। बालमन में बदला जैसी शब्द गंध भरकर इन परिस्थितियों को दोहराने के रास्ते बनाने की गलती करते हैं।

''विदा'' मे आदिवासी युवती दाखा अपने पिता की जमीन पर अधिकार के लिए संघर्ष करती है तथा चचेरे भा यों के स्थान पर खुद पगडी पहनकर परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ती है। 35 की वय में विधुर व विजातीय मास्टर से माँ की उपस्थिति में शादी करती है, शादी का जात-बिरादरी ने बहिष्कार किया है परंतु विदा के अवसर पर माँ-बेटी के समवेत रूदन से बस्ती की तंद्रा टूटती है व एक-एक सभी औरतें दाखा को विदा करने जुटती हैं क्योंकि विदा के दर्द की इस पीडा को सभी ने झेला था।

''यूँ ही मैं बावरी'' - महिला व पुरूष बास को लेकर मातहत के दृष्टिकोण का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है जिसमें स्त्री व पुरूष दोनों ही पुरूष बॉस से ज्यादा सहज महसूस करते हैं। प्राचार्य मैडम के गांव, घर, जमीन छोडकर विस्थापित होने का दर्द और सदमा उनके व्यवहार को किस तरह प्रभावित करता है तथा कैसे वह अपने-आप को अकेला, उपेक्षित और अवांछित महसूस करती है, का अच्छा चित्रण है।

''अपारदर्शी सच'' में अतृप्त तनुजा की झुंझलाहट, सिसकियाँ व मनीष के आहत और शर्मिंदा मन का विश्लेषण है। तनुजा का शक और कुंठित-अतृप्त आकांक्षा उसे हाटेलके कमरे तक पहुँचाती है और अनायास ह्दय परिवर्तन पर वापस लौट आती है तथा एक न सुबह का आगाज करती है।

''अभिमन्यु लड़ रहा है'' - सेना के जवान अभिमन्यु को पत्नी सावी और अपने मित्र विनय के सम्बंधो की जानकारी होती है तभी सीमा पर युद्ध की शुरूआत होती है। अभिमन्यु के अंतर्द्वंद का अच्छा चित्रण किया गया है कि वह सीमा पर चलरही जंग लडे या खुद के भीतर चलरहे युद्ध का सामना करे, अभिमन्यु हथियार उठाकर चलदेता है और व्यक्तिगत द्वंद पर देश को तरजीह देता है।

''आसान राह की मुश्किल'' - आदिवासी किस तरह कर्ज के चंगुलमें फँसकर सारी जिंदगी गुलामी को अभिशप्त हैं, इसे अपनी नियति मानते हुए कर्ज लेकर ही वह कुछ अच्छी जिंदगी का स्वप्न संजोता है।

''आदत'' - साम्प्रदायिक दुर्भाव ने जो अविश्वास की खाइयाँ बढा हैं कि बगैर किसी कारण के सामाजिक दबाव के चलते दो मित्रों के बेटों के बीच अबोला और अलगाव पनपता है तथा एक मित्र का पुत्र अपनी जमीन व मकान को चुपचाप बेचकर चलदेता है। महादेव के इस तरह अचानक चले जाने पर अल्ताफ ढूंढते हुए बस स्टेंड पहुँचता है तथा दोनों के गले मिलने से दिखावटी अलगाव आंसुओ की धार में विगलित हो जाता है।

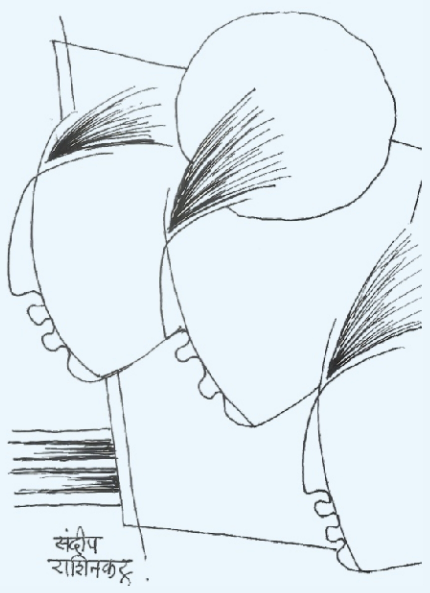

यह कहानी हमारी गंगा-जमनी तहजीब को रेखांकित करती है।

''विलुप्त'' - धार तेज करने वाले, सिलटांकने वाले अब दिखा नही देते , न ही गलियों मे उनकी आवाज सुना देती है। विलुप्त होते इन परम्परागत रोजगारों के साथ छीजते मानवीय गुणों को स्थापित करने की कोशिश इस कहानी में है।

''सामराज'' - परिवार के बुजुर्गो के प्रति संवेदना के क्षीण होने को दर्शाती इस कहानी में बुजुर्ग ठ्कुराइन का बेटा अनजान शहर में माँ को छोड देता है। रोज दफ्तर जाते व्यक्ति से संवेदना के तार जुड़ते हैं तथा बूढ़ी औरत की भोली मुस्कान की वह रोज तलाश करता है। टूटे कप, कंघी, बोतलजैसी छोटी-छोटी वस्तुओं की पूंजी का साम्राज्य बूढ़ी ठकुराइन को किसी गरीब के लिए अपनी पूंजी व साम्राज्य को छोडने की आकांक्षा संवेदना के क्षितिज का एक नया आयाम दिखा देता है।

कविता वर्मा के दूसरे कथासंग्रह की कहानियाँ उनके सूक्ष्म प्रेक्षण व गहन संवेदन का जीवंत दस्तावेज हैं। उनके प्रथम कथा संग्रह ''परछाइयों के उजाले'' की कहानियों मे उच्च / मध्यम वर्ग के पारिवारिक / सामाजिक द्वंद के बरक्स इस कथा संग्रह मे निम्न मध्य वर्ग, वंचित आदिवासी समुदाय के पारिवारिक / सामाजिक / आर्थिक द्वंद के स्वर मुखर है। उनके रचनाकार की दृष्टि व केनवास का विस्तार स्पष्ट दिखा देता है। इस संग्रह का स्वागत करते हुए कविताजी को बधा देता हूँ तथा शुभकामना व्यक्त करता हूँ कि अपनी लेखनी से जीवन मूल्यों व मानवीय मूल्यों को स्थापित करते हुए वे समाज को झंझोडने / उद्वेलित / प्रेरित करने के रचनाकार के महत्ते दायित्व का निर्वाह करती रहेंगी। स

सुरेश उपाध्याय
133, गीता नगर (लालाराम नगर के पास)
इंदौर (म.प्र.) - 452018

खेद-प्रकाश

समावर्तन के जुलाई 2019 अंक में पृष्ठ-पर मीनाक्षी जोशी जी की कृति पर वरिष्ठ लेखक दामोदर खड़से की समीक्षा प्रकाशित है। इस समीक्षा के अंत में तकनीकी त्रुटिवश खड़से जी के फोटो के स्थान पर किसी अन्य का फोटो प्रकाशित हो गया है जिसके लिए हमें खेद है तथा हम क्षमाप्रार्थी हैं।

- संपादक

'तरल सत्य से भीगी चमक बिखेरती लघुकथाएं'

बी.एल.आच्छा

कितना कारावास (लघुकथाएं)
मुरलीधर वैष्णव
बोधि प्रकाशन, जयपुर-302006
मूल्य : 150 रूपये

अक्षय तूणीर के बाद 'कितना कारावास' श्री मुरलीधर वैशणव का दूसरा लघुकथा संग्रह है। कहा जाता है कि जिस लेखक के जीवन में जितना वृहत् जीवनानुभव होता है, उसका साहित्य भी उतनी ही लोक संपृक्ति से धरातलीय विस्तार पाता है। लेखक के जीवन में न्याय की कुर्सी रही है और उसके सामने ही बयान करता संघर्शशील समाज, उसके द्वन्द्व, न्याय के तकाजे, बहसों के तर्क, अपनी-अपनी गुहार लगाती बॉडी लैंग्वेज और कभी आंखों में तरल सत्य से भीगी चमक और विवशता। इनके साथ पूरी न्याय व्यवस्था का असल चित्र, प्रशासनिक व्यवस्थाओं में फैले कदाचार और कानूनी दंड संहिताओं को मानवीय सहृदयता के अक्स दिखाती न्यायिक संवेदना के साथ बदलाव की पक्षधरता। इसीलिए 'कितना कारावास' ही व्यंजक भीर्शक है, तीस रूपए की डबल रोटी का पैकेट चुराने वाले साधारण से भूखे इंसान और दस करोड़ के भूखंड को चुराने वाले नेता के बीच। भूखे इंसान को सजा देने के लिए पुलिस अैर दस करोड़ के भूखंड-चोर नेता की सुरक्षा के लिए पुलिस। न्याय यहीं उगना चाहता है, संवेदना यहीं चिन्गारी फेंकना चाहती है, भाब्द यहीं आक्रामक होना चाहता है वैसे ही जैसे कठोर चट्टानों को फोड़ कर दरारों के बीच घास उग जाना चाहती है। इसीलिए इन लघुकथाओं में न्याय की सहृदयता जिन्दगी के उन अक्सों को खंगालना चाहती है, जो इन न्याय तंत्र को, क्षरणशील मानवीय संवेदनाओं को, पतनशील सामाजिक मूल्यों को मानवीय अर्थवत्ता से बेहतर जीवन की ओर ले जा सके। इसीलिए इन लघुकथाओं में लोक जीवन, न्यायिक परिदृश्य, सामाजिक सरोकार और साहित्यिक संवेदन एक व्यापक संधि क्षेत्र में बदलाव की आकांक्षा लिए हुए है।

इस लिहाज से 'कितना कारावास' की लघुकथाएं हिन्दी लघुकथा के धरातल का विस्तार करती है। इस परिधि में बकिों में ॠण स्वी.ति के गोरख धंधे, टीआरपी के लिए ब्रेकिंग न्यूज बनाते चैनल, अवकाशों में लटकती न्याय प्रणाली, भाराब के ठेकों में 'मौताणा' की मौजें, बीमा कंपनियों के फर्जीनामे, ट्रेफिक पुलिस के उगाही के धंधे, लोक अदालतों में सांख्यिकी के श्रेय, लालच और धमकियों से बरी होते बलात्कारियों, साक्ष्य के अभाव में पीड़ित को सजा देती न्याय प्रणाली, मनरेगा के भ्रश्टाचार जैसे अनेक परिदृ य सामने आते हैं, जहाँ न्याय झिलमिल रोशनी फेंकना चाहता है, पर तंत्र का सांठगांठी कोहरा उसे रोशन नहीं होने देता। ऐसे में निहत्थे लोग कितना कारावास की लम्बाई में छटपटाते हैं और समर्थ लोग सारी कारस्तानियों और दबावों में पीड़ित को ही सजा दिलवा देते हैं। इस लिहाज से 'पागल' लघुकथा का मेजर जिन मिलकियतविहीन प्रा.तिक उपादानों से बकि अधिकारी पर मार करता है, वह गोलियों की कोमल किन्तु मारक बौछार है। 'ब्रेकिंग न्यूज' की टीआरपी, 'मौताणा' का ठेकेदारीय शडयंत्र, 'सर्वजन हिताय' के फर्जी बीमा भुगतान, 'हरी तख्ती' की पुलिसिया ट्रेफिक लूट, 'लॉक्क अदालतों' की सांख्यिकी, 'मनरेगा' की बिचौलिया लूट मारक लघुकथाएं हैं। पर 'अच्छे लोग' की प्रशासनिक सहृदयता भी उजाले की आवस्ति देती है, संवेदना की श्रेयविहीन क्रियात्मकता।

लेकिन लेखक के सामाजिक सरोकार भी बहुत व्यापक है और वे उसके अनुभव क्षेत्र के संवेदनीय परिदृ य हैं। इनके भीतर न्याय ही नहीं, संवेदना और मानसिक रूपांतरण की गहरी कोशिश भी लेखकीय दायित्व का हिस्सा है, यही भााब्दिक कला की सामाजिक सिद्धि और सहकार की गीली जमीन है, जो 'आखिरी कोशिश' में व्यंजित है। 'दिवाली पूजन' में अनाथ बच्चे का दर्द, 'शाही पनीर' में ड्राईवर और मालिक के बीच आदमियत का फर्क, 'चालान' में आदमी और अफसर के बीच का अंतर, 'नोटिस' में रि तों का भावनात्मक संसार, 'रजत रेखा' में वृद्धों के लिए युवा मन का संस्कार जैसे अनेक पक्ष सामाजिक यथार्थ के साथ मानवीय व्यवहार की सकारक दिशा संजोते हैं। इस लिहाज से 'बोझ', 'रक्त संबंध', 'उठावणा', 'मेरा भारत महान', 'होली का नारियल', 'परख' अच्छी लघुकथाएं हैं। कुछ लघुकथाओं में न्याय से अलग प्रतिघातक दण्ड भी प्रकांतर से न्याय की दिशा और मूल्य सजगता को ही प्रशस्त करता है। 'फूल स्टाफ', 'शाही पनीर', 'दया की माया', 'ज्योतिशफल', 'मैनर्स', 'गुरूदक्षिणा' ऐसी ही आघात करती लघुकथाएं हैं जो अप मूल्यों पर असरदार हैं।

संग्रह की लघुकथाएं घटनापरक सी लगती हैं और घटनाओं को लघुकथा में विन्यस्त करती लगती हैं। इसीलिए इनमें संस्मरणात्मक तत्त्व नियोजित लगता है। इनकी भाशा में भी इसीलिए सहजता है और कथाकथन की भौली आमफहम है। वर्णनात्मक शिल्प में रची लघुकथाओं में पात्र और घटनाक्रम लेखकीय दिशा ही पकड़ते हैं। वे द्वन्द्वों और संवादों से चरित्र निर्मित नहीं करते। लेकिन जिन लघुकथाओं में संवादशिल्प मुखर है, उनमें द्वन्द्व, चरित्र, संदेश सहज ही व्यंजित होते हैं, लेखकीय प्रवेश को धता बताते हुए। इसीलिए उनका शिल्प निखरा है। 'पागल', 'जीरो लॉस', 'धंधा पानी', 'बोझ', 'पहचान कौन', 'घातक', 'सहकर्मी' ऐसी ही लघुकथाएं हैं, जो आकार में लघु, संवादों में आरोह-अवरोह को रचती हुई, संदेश में लेखकीय प्रवेश से दूर और विन्यास में चुस्त हैं। 'दया की माया' में पंचतंत्रीय भौली, गान्धारी में प्रतीकात्मकता और 'शब्दगंध' में कथा भाशा की चयन परकता कलात्मक दिशा जरूर रचती है।

इन लघुकथाओं में पुरानी लघुकथाओं की बोधात्मकता, किस्सागोई शिल्प, संदेशपरक दृश्टांत भाव, वर्णनात्मक कथाकथन भौली के अवशेश विद्यमान हैं, पर लोक जीवन की वास्तविकताएं, जीवन के द्वन्द्व, प्रशासनिक-न्यायिक-सामाजिक व्यवस्थाओं के कुचक्र इन कथानकों में गहरे रचे बसे हैं और इन्हीं पर आघात करती और आंतरिक बदलाव की भाव वृत्तियों को रचती सकारक दृश्टि लेखक की उद्दे यपरकता को भी व्यंजित करती है। स

36, क्लीमेन्स रोड, सखना स्टोर्स के पीछे,
पुरूशवाकम्, चेन्नई (तमिलनाडु), पिन- 60007
मो.नं. : 94250-83335

उसके साथ चाय का आखिरी कप

मनीष वैद्य

उसने चाय का एक घूँट भी नहीं पिया, मैंने भी नहीं पिया। मैंने सोचा कि उससे पूछ कर देखते हैं कि दुनिया यदि यहीं समाप्त हो जाए तो क्या होगा। पर नहीं पूछा, पता नहीं क्या जवाब दे दे।

मैंने सोचा, क्या हिरोशिमा की तरह को बम नहीं गिर सकता। फिर उसी तरह को बम गिरे और सारी दुनिया खत्म हो जाए और उसी तरह हम दोनों की, मेरी और उसकी इमेज इस पत्थर पर अंकित रह जाए. आने वाला युग याद करेगा कि जिस वक्त बम गिरा, उस वक्त मेज पर एक प्रेमी युगल बैठा था।

...धीरे-धीरे मुझे पूरा विश्वास हो गया कि यही दुनिया का अंत है ...एक सुखद अंत!'' इन पंक्तियों से गुजरते हुए मैंने भी ठीक अभी-अभी सुधांशु गुप्त का ताजा कहानी संग्रह 'उसके साथ चाय का आखिरी कप' पढ़ते हुए किताब का सुखद अंत किया है। पिछले कुछ दिनों से इस संग्रह की गिरफ्त में था। सोचा था, पढ़कर मुक्त हो जाऊँगा लेकिन कहानियों के किरदार मुक्त नहीं होने दे रहे। उनकी आवाजें अब भी मेरे आसपास गूँज रही है। उनकी मनोदशाएँ मेरे भीतर उथल-पुथल मचा रही हैं। मुझे लगता है कि हमारा पढ़ा हुआ अवचेतन में ही दर्ज रह जाया करता है। इस संग्रह में ज्यादातर कहानियाँ भी अवचेतन और यथार्थ के बीच कहीं से आती नजर आती हैं। कभी लगता है कि खुली आँखों से को सपना देख रहे हैं और दूसरे ही पल लगता है कि हम तो यथार्थ में यहाँ मौजूद हैं। इनमें मनोभावों का बड़ा गहरा और शिद्दत से खाका खींचा गया है। इनमें हमारे अपने शोक हैं, चिंताएँ हैं, दुःख हैं, भ्रम हैं, छोटे-छोटे सुख के टुकड़े हैं और र्ष्या, द्वेष, अहम् सब कुछ हैं। कहना होगा कि ये बाहर से ज्यादा भीतर की कहानियाँ हैं। इनमें हमारा समाज और समय भी इन्हीं में से झाँकता है। अच्छी बात है कि ये यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से मनोभावों के जरिए दाखिल होते हैं। आमफहम तरीकों से इतर। इन्हें अस्तित्व बचाने की जद्दोजहद की कहानियाँ भी कहा जा सकता है।

उनकी छोटी-छोटी कहानियों का यूनिक शिल्प और भाषा उन्हें अपने समकालीन कथाकारों से अलग पहचान देती है। शहरी मध्यवर्गीय और निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की इन कहानियों में बीते लगभग तीस साल से भी ज्यादा का वक्फा तैरता दिखता है। घटा हुआ पूरा दौर आँखों के सामने गुजरने लगता है। भावना प्रकाशन ने इसे सुरुचिपूर्ण तरीके से छापा है।

'कंट्रोल जेड' कहानी अपने अनूठे शिल्प में हमें उस भाव भूमि में ले

उसके साथ चाय का आखिरी कप
सुधांशु गुप्त
भावना प्रकाशन नईदिल्ली
मूल्य रू.395/-

जाती हैं जहाँ हम किसी भी वस्तु या संसाधन के खत्म होने तक तो करीब - करीब लापरवाह रहते हैं लेकिन जैसे ही वह खत्म हो जाती है या हमारी पहुँच से दूर हो जाती है तो हम उसके लिए तमाम जद्दोजहद करने लगते हैं। हम अपनी प्रकृति. पानी और पर्यावरण के लिए भी करीब इसी तरह का भाव लिए हुए हैं। होना तो यह चाहिए कि जैसे ही किसी के खत्म होने का अंदेशा हो तो उसे पहले ही सहेज लेना चाहिए। थाम लेना चाहिए।प्रेम भी तो इसी कारण हमसे दूर होता जा रहा है। यह कहानी हमें ऐसे कितने ही रूपकों में याद आती है। 'यह सपना नहीं है' कहानी हमें एक अलग तरह के कल्पना लोक में ले जाने के बाद भी हमें यथार्थ से जोडती है।

'सामान के बीच रखा पियानो' इस संग्रह की एक बहुत अच्छी छोटी सी कहानी है जो अपने समय और समाज के चरित्र को बड़े हौले से सामने रखती है। एक व्यक्ति कमा के अभाव में किस तरह अपने ही घर में अप्रासंगिक होता चला जाता है। क्या हमारे बीच का पारिवारिक माहौल, उसकी स्नेहभरी आत्मीयता, सहज प्रेम अब बीते दिनों की कहानी भर रह गया है। ऐसे क सवाल यह कहानी पाठकों के जेहन में छोड़ जाती है।

'एक मौन प्रेम कथा' भी रेखांकित करने लायक कहानी है। इसकी कुछ पंक्तियाँ हैं ''बीसवीं सदी के अंतिम दशक में खुशी के और भी क कारण अचानक पैदा हो गए हैं। टीवी रंगीन हो चला है। मनुष्य ने युद्धों के भी लाइव प्रसारण देखने की ताकत अर्जित कर ली थी। वैश्वीकरण ने मुल्कों की सरहदों को खतम करना शुरू कर दिया था और देश के प्रधानमंत्री ने आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत कर दी थी।'' स

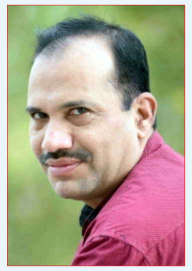

11 ए, मुखर्जीनगर, पायनियर चौराहा,
देवास (मप्र) पिन 455 001
मोबाइल - 98260 13806
मेल - manishvaidya1970@gmail.com

लेखकों/समीक्षकों से निवेदन

- युवा कवियों/कहानीकारों/लघुकथाकारों से रचनाएं आमंत्रित है।
- समावर्तन में अनाहूत समीक्षाएं प्रकाशित नहीं की जाती है।
- देखा गया है कि पुस्तक के साथ ही किसी लेखक की समीक्षा भी प्रकाशनार्थ भेज दी जाती है, जो उचित नहीं है। ऐसी समीक्षाओं पर विचार नहीं किया जाता है।
- यदि कोई विशेष समीक्षा प्रकाशित की जाना है तो लेखकों से अनुरोध है कि वे सम्बद्ध पुस्तक, अपना फोटो तथा पता अवश्य भेजे तथा इस समीक्षा को तीन माह तक अन्यत्र प्रकाशनार्थ नहीं भेजें।
- समीक्षाएं छोटी तथा सारगर्भित हो, अर्थात अधिकतम 750 शब्दों से ज्यादा न हो। इससे बड़ी समीक्षाएँ कृपया नहीं भेजें।
- प्रकाशनाथ सामग्री ई-मेल : samavartan@yahoo.com से कृतिदेव 010 फोन्ट में भेजी जा सकती है।

सम्पादक - समावर्तन, माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन 456010 मो.9425915010

श्री पयोधि के काव्य पर विमर्श

भोपाल। गत दिनों कला समय, संस्कृति, शिक्षा और समाजसेवा समिति, रौनक सोश्यल कल्चरल सोसायटी एवं वंदेमारतम उत्सव समिति के संयुक्त तत्वावधान एवं वरिष्ठ कवि श्री ओम भारती की अध्यक्षता में स्थानीय स्वराज भवन संस्थान में पयोधि काव्य प्रसंग आयोजित हुआ। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि रंगकर्मी संजय मेहता तथा विशिष्ट अतिथि श्री भूपेन्द्र गुप्ता 'अगम' थे। इस अवसर पर श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि के काव्य पर विमर्श के दौरान श्री महेश अग्रवाल, डॉ.किशन तिवारी तथा श्री लक्ष्मीकांत जवणे ने विस्तार से अपनी बात रखी। युवा रंगकर्मी ज्योति दुबे के संयोजन में उनकी टीम द्वारा पयोधि जी की पुस्तकों, छायाचित्रों, उराँव चित्रकार आग्नेश केरकेट्टा के मुखोटे एवं अन्य शिल्पों का प्रदर्शन किया गया तथा पयोधि जी की कविताओं की प्रस्तुति भी की गई। संचालन कथाकार युगेश शर्मा ने तथा कृतज्ञता ज्ञापन भंवरलाल श्रीवास द्वारा किया गया।

प्रस्तुति : भंवरलाल श्रीवास

विज्ञान व्रत को सम्मान

लखनऊ। गत दिनों कवि, साहित्यकार विज्ञान व्रत को रविवार को दसवां शिक्षक साहित्यकार सम्मान से सम्मानित किया गया। यूपी प्रेस क्लब में मुख्य अतिथि हिन्दी कवि नरेश सक्सेना की मौजूदगी में उन्हें अंगवस्त्र, प्रतीक चिह्न, सम्मान पत्र और 3100 रूपये की सम्मान राशि से सम्मानित किया गया। विज्ञान व्रत की नवीन कृति 'नेपथ्यों में कोलाहल' तथा रश्मि शील की कृति 'धर्मवीर भारती' का विमोचन भी किया गया। मुख्य अतिथि नरेश सक्सेना ने कहा कि विज्ञान व्रत की कविताओं में समाज को दिशा देने की क्षमता है। उनके अंदर का कलाकार और शिक्षक साहित्य को समृद्ध करता है। विशिष्ट अतिथि उदयप्रतापसिंह ने उनकी गजलों के प्रमुख स्वर पर चर्चा की। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ.दिनेशचंद्र अवस्थी ने की।

कृति चर्चा 'मोन्टानां' और 'अच्छी औरतें'

लंदन। गत दिनों वातायन पोएट्री आन साउथ बैंक द्वारा नेहरू सेंटर लंदन में एक विशेष साहित्यिक समारोह का आयोजन किया गया जिसमें जानी-मानी लेखिका और अनुवादक डॉ.उर्मिला जैन की पुस्तक 'ट्रेमापेन्टाना' जो कि स्पैनिश लेखक मार्क्वेज़ गेब्रियल की कहानियों का सुंदर अनुवाद है और एटलांटा-कैनेडा से पधारी वरिष्ठ अनुसंधानकर्ता और कथाकार डॉ.कमला दत्त के कहानी-संग्रह 'अच्छी औरतें' पर लंदन में बसी साहित्यकारों, डॉ.अचला शर्मा एवं श्रीमती शैल अग्रवाल द्वारा चर्चा की गयी; लेखिकाओं ने अपनी एक छोटी कहानी का नाटकीय पाठ भी किया। वातायन की अध्यक्ष मीरा कौशिक, ओ.बी.ई. ने मंच से अतिथियों एवं श्रोताओं का स्वागत-अभिनंदन किया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे ब्रिस्टल के मेयर माननीय टॉम आदित्य। आक्सफोर्ड बिजिनेस कॉलेज के डायरेक्टर और प्रसिद्ध लेखक डॉ.पद्मेश गुप्त ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। कार्यक्रम का कुशाल संचालन कवि डॉ.निखिल कौशिक ने किया। श्रीमती अरुणा सब्बरवाल ने धन्यवाद ज्ञापन प्रस्तुत किया।

प्रस्तुति : शन्नो अग्रवाल

पंकज सुबीर के नए उपन्यास का विमोचन

इंदौर। शिवना प्रकाशन द्वारा आयोजित एक गरिमामय साहित्य समारोह में सुप्रसिद्ध कथाकार पंकज सुबीर के तीसरे उपन्यास 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे

डॉ.देवेन्द्र जोशी की पुस्तक सदी के सितारे का लोकार्पण संपन्न

उज्जैन। वरिष्ठ लेखक, संपादक डॉ.देवेन्द्र जोशी की नई पुस्तक 'सदी के सितारे' का गत दिवस एक गरिमामय समारोह में लोकार्पण संपन्न हुआ। प्रसिद्ध साहित्यकार प्रो.रामकिशोर शर्मा, इलाहाबाद के मुख्य आतिथ्य और कुलपति प्रो.बालकृष्ण शर्मा की अध्यक्षता में संपन्न समारोह में सारस्वत अतिथि छत्तीसगढ़ राजभाषा आयोग के पूर्व अध्यक्ष प्रो.विनयकुमार पाठक, बिलासपुर थे। पुस्तक की समीक्षा करते हुए कुलानुशासक एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ.शैलेन्द्रकुमार शर्मा ने कहा कि यह कृति अपने समय का महत्त्वपूर्ण दस्तावेजीकरण है। इस अवसर पर प्रो.प्रेमलता चुटैल, प्रो.गीता नायक भी उपस्थित थीं। पुस्तक में महात्मा गांधी सहित अनेक समाजसेवियों, लेखकों और सांस्कृतिकर्मियों पर केन्द्रित महत्त्वपूर्ण लेखों का संग्रह किया गया है। इस अवसर पर डॉ.शिव चौरसिया, श्रीराम दवे, डॉ.पिलकेन्द्र अरोरा, डॉ.रफीक नागौरी, डॉ.जवाहर कर्नावट सहित बड़ी संख्या में गणमान्यजन उपस्थित थे। कार्यक्रम का संचालन प्रो.जगदीश शर्मा ने किया।

नाज़ था' का विमोचन किया गया। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध कथाकार, उपन्यासकार तथा नाट्य आलोचक डॉ.प्रज्ञा विशेष रूप से उपस्थित थीं।

इस अवसर पर वामा साहित्य मंच इंदौर की ओर से पंकज सुबीर को शॉल, श्रीफल तथा सम्मान पत्र देकर सम्मानित किया गया। मंच की अध्यक्षा पद्मा राजेन्द्र, सचिव ज्योति जैन, गरिमा संजय दुबे, किसलय पंचोली तथा सदस्याओं द्वारा पंकज सुबीर को सम्मानित किया। स्वागत भाषण कहानीकार, उपन्यासकार ज्योति जैन ने कहा कि इस उपन्यास का इंदौर में विमोचन होना असल में हमारे ही एक लेखक की पुस्तक का हमारे शहर में विमोचन होना है। इस अवसर पर बोलते हुए डॉ.प्रज्ञा ने कहा कि नई सदी में जो लेखक सामने आए हैं, उनमें पंकज सुबीर का नाम तथा स्थान विशिष्ट है। उपन्यास के लेखक पंकज सुबीर ने अपनी बात करते हुए कहा कि इस उपन्यास को लिखते समय बहुत सारे प्रश्न मेरे दिमाग में थे। साम्प्रदायिकता एक ऐसा विषय है जिस पर लिखते समय बहुत सावधानी और सजगता बरतनी होती है, ज़रा सी असावधानी से सब कुछ नष्ट हो जाने की संभावना बनी रहती है। अंत में आभार व्यक्त किया शिवना प्रकाशन के महाप्रबंधक शहरयार अमजद खान ने। संचालन संजय पटेल ने किया। इस अवसर पर सर्वश्री प्रभु जोशी, सरोज कुमार, सूर्यकांत नागर, सदाशिव कौतुक, कैलाश वानखेड़े, कविता वर्मा, किसलय पंचोली, डॉ.गरिमा संजय दुबे, समीर यादव, शशिकांत यादव, अर्चना अंजुम, सुदीप व्यास, आनंद पचौरी, प्रदीप कांत, प्रदीप नवीन, अनिल वालीवाल, कैलाश अग्रवाल, उमेश शर्मा, शरद जैन, भारती दीक्षित, पंकज दीक्षित, अनिल त्रिवेदी, आदित्य जोशी, राजेन्द्र शर्मा सहित बड़ी संख्या में इंदौर, देवास सहोर तथा उज्जैन से पधारे हुए साहित्यकार उपस्थित थे।

कृति 'कमलेश्वर का रचना संसार' विमोचित

इंदौर। गत दिनों डॉ.वंदना अग्निहोत्री की पुस्तक कमलेश्वर का रचना संसार का विमोचन वरिष्ठ साहित्यकार डॉ.राजेन्द्र मिश्र, अध्यक्ष डॉ.सुमित्रा वासकेल, मुख्य अतिथि व चर्चाकार डॉ.पद्मासिंह और डॉ.योगेन्द्र नाथ शुक्ल के हाथों मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति में हुआ। अपने आत्मकथ्य में लेखिका ने कहा कि श्री कमलेश्वर की घटनाओं को देखने की नज़र व प्रस्तुतिकरण की शैली ने उन्हें इस पुस्तक के लिए प्रेरित किया, व इसमें समूचे रचना संसार को शामिल किया है। अपने वक्तव्य में राजेन्द्र मिश्र ने कहा कि कमलेश्वर का कथा साहित्य अतुलनीय है और उस विराट विस्तृत संसार को समेटने का कठिन कार्य लेखिका ने किया है। श्री मुकेश तिवारी डॉ.पद्मासिंह तथा डॉ.योगेन्द्रनाथ शुक्ल ने भी अपने विचार व्यक्त किये। संचालन डॉ.गरिमा संजय दुबे ने किया, आभार योग्यता मिश्रा ने माना। इस अवसर पर पारिवारिक मित्रगण व इंदौर शहर के सुधि साहित्यकार डॉ.पुरुषोत्तम दुबे, डॉ.आशुतोष दुबे, ज्योति जैन, डॉ.कला जोशी, हरेराम वाजपेयी, प्रदीप नवीन व कई शोधार्थी मौजूद थे।

पत्रिका 'बांसुरी' का गांधी विशेषांक लोकार्पित

उज्जैन। एक भारतीय होने के नाते हर व्यक्ति को इस बात पर गर्व होना चाहिए कि वह उस देश में जन्मा है जो राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जन्म स्थली है। गांधी जी के आदर्शों को जीवन में उतारने के लिए उन्हें पूजने की नहीं बूझने की जरूरत है। अर्थात गांधी को पढ़और समझकर ही उन्हें जीवन में उतारा जा सकता है। उक्त विचार कृष्णा पब्लिक स्कूल की वार्षिक पत्रिका 'बांसुरी' के गांधी विशेषांक के लोकार्पण अवसर पर वक्ताओं ने व्यक्त किये। कार्यक्रम के अतिथि के रूप में विक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ.बालकृष्ण शर्मा, कुलानुशासक डॉ.शैलेन्द्र कुमार शर्मा, डॉ.उर्मि शर्मा, डॉ.संतोष पण्डया उपस्थित थे। अध्यक्षता राष्ट्रपति पुरस्कार प्राप्त संस्कृताचार्य डॉ.केदारनारायण जोशी ने की। सीमा जोशी और देवेन्द्र जोशी ने अतिथियों के हाथों बाँसुरी का यह अंक लोकार्पित करवाया। इस वर्ष बांसुरी को गांधी विशेषांक के रूप में प्रकाशित कर गांधी जी और कस्तूरबा गांधी पर विशेष सामग्री प्रकाशित की गई है जिसमें साहित्य और संस्कृति संपन्न कई लेखकों की गद्य और पद्य की रचनाएँ होने से यह अंक संग्रहणीय हो गया है। प्रस्तुतिः देवेन्द्र जोशी

पावस व्याख्यानमाला बा-बापू को समर्पित

भोपाल। म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की प्रतिष्ठित पावस व्याख्यानमाला की छब्बीसवीं शृंखला बा-बापू-150 जन्मवर्ष पर गाँधी विचारों पर केन्द्रित रखी जाकर इसका शुभारंभ 10 अगस्त को हिन्दी भवन, भोपाल में होगा। 'गाँधी जी का मानवता को अवदान', विश्व के सभ्यता विमर्श में गाँधी का हस्तक्षेप' 'हिन्दी साहित्य में गाँधी की अनुगूँज' तथा गाँधी चिन्तन की अर्न्तदृष्टि : सत्य और अहिंसा के संदर्भ में विमर्श के चार सत्रों के विमर्श के केन्द्र में रहेंगे। इन विषयों पर सर्वश्री रमेशचन्द्र शाह, डॉ.बी.बी.कुमार, श्री बनवारी, डॉ.अंबिकादत्त शर्मा, प्रो.शंकरशरण, श्री सन्तोष चौबे, श्री विश्वनाथप्रसाद तिवारी, डॉ.सदानन्द गुप्त, श्री रमेश दवे, श्री ध्रुव शुक्ल, डॉ.अरुणाशंकर उपाध्याय, डॉ.उर्मिला शिरीष, डॉ.स्मृति शुक्ला, न्यायमूर्ति श्री डी.एम. धर्माधिकारी, श्री वीरन्द्र याज्ञिक, श्री अच्युतानंद मिश्र, श्री विश्वनाथ सचदेव, डॉ.श्री भगवानसिंह, डॉ.डी.एन.प्रसाद, श्री मुकेश वर्मा, प्रभृति विद्वान विचार व्यक्त करेंगे। विषय प्रवर्तन करेगी डॉ.अम्बेडकर समाज विज्ञान विवि की कुलपति डॉ.आशा शुक्ला।

प्रस्तुति - म.प्र.राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

श्री सदाशिव कौतुक को अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी गौरव सम्मान

इन्दौर। वरिष्ठ साहित्यकार सदाशिव कौतुक को अनवरत साहित्य सेवा में महत्त्वपूर्ण योगदान हेतु विश्व हिन्दी उत्सव मॉरीशस 2019 के अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन मॉरीशस में 5 अक्टूबर 2019 को अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी गौरव सम्मान ऋषि दयानंद संस्थान (डी.ए.वी.) कॉलेज पाई पोर्टलुईस सभागृह में प्रदान किया जायेगा। अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलन 1 अक्टूबर से 7 अक्टूबर तक आर्य सभा मॉरीशस, हिन्दी संगठन मॉरीशस, संस्कृति मंत्रालय मॉरीशस सरकार एवं आधारशिला फाउण्डेशन अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी मिशन यूके के तत्वावधान में आयोजित कार्यक्रम में भारत-मॉरीशस व दूसरे देशों से आ रहे हिन्दी लेखक, भाषाविद, संपादक हिन्दी को केन्द्र में रखकर भविष्य के कार्यक्रमों पर भी चर्चा करेंगे। इस अवसर पर उनकी 55वी कृति ग़ज़ल संग्रह 'देखते ही देखते' के लोकार्पण के साथ ही उनकी दो लघुकथाओं पर लघु फिल्म का प्रदर्शन भी किया जायेगा।

प्रस्तुति : हरेराम वाजपेयी

कमर मेवाड़ी को डॉ.विद्यासागर शर्मा सृजन सम्मान

राजसमन्द। कवि, कथाकार, उपन्यासकार एवं साहित्यिक पत्रिका 'सम्बोधन' के पूर्व सम्पादक कमर मेवाड़ी का अस्सी वर्ष पूर्ण होने के शुभ अवसर पर राजस्थान साहित्यकार परिषद कांकरोली ने गत दिनों एक भव्य समारोह का आयोजन किया। समारोह के मुख्य अतिथि उज्जैन से प्रकाशित साहित्यिक मासिक पत्रिका के सम्पादक श्रीराम दवे, विशिष्ट अतिथि प्रख्यात कथाकार श्री प्रतापसिंह सोढ़ी (इन्दौर) तथा साहित्यिक त्रैमासिक पत्रिका 'सृजन कुंज' के सम्पादक डॉ.कृष्णकुमार 'आशु', थे। अध्यक्षता आयुर्वेदाचार्य एवं समाजसेवी डॉ.वेदप्रकाश शर्मा जयपुर ने की।

इस अवसर पर सुप्रसिद्ध कथाकार माधव नागदा के अतिथि सम्पादन में कमर मेवाड़ी पर केंद्रित 'सृजन कुंज' के विशेषांक का सभी अतिथियों द्वारा लोकार्पण किया गया। इससे पूर्व स्वागताध्यक्ष मधुसूदन पण्ड्या ने सभी अतिथियों का स्वागत किया।

समारोह में त्रिलोकी मोहन पुरोहित, नरेन्द्र निर्मल एवं नगेन्द्र कुमार मेहता ने भी सम्बोधित किया। इस अवसर पर 'सृजन सेवा संस्थान' श्री गंगानगर द्वारा समारोह के अध्यक्ष डॉ.वेदप्रकाश शर्मा एवं संस्थान के साहित्यकार साथियों ने क़मर मेवाड़ी को डॉ.विद्यासागर शर्मा सृजन सम्मान से नवाजा। सम्मानित साहित्यकार कमर मेवाड़ी ने सम्मान के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हुए कहा कि 'यह क्षण मेरी ज़िन्दगी का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण है। ऐसे सम्मान लेखक में ऊर्जा का संचार करते हैं और उसे लिखने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

समारोह के मुख्य अतिथि श्रीराम दवे ने कहा कि - 'पिछले पांच दशकों से जो व्यक्ति अपने सीमित संसाधनों से 'सम्बोधन' जैसी स्तरीय और महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन-सम्पादन करता रहा हो वह व्यक्ति सदैव सम्माननीय है। उम्र तो एक सोपान भर है। सृजन का उत्साह लेकर हिन्दी साहित्य को अपने सृजन और निष्पक्ष पत्रकारिता से समृद्ध करने वाले कमर मेवाड़ी जी का यह उन्मेष सदैव निर्विहार रहे और वे सृजनरत रहकर वह सब

लिख सकें जिसके लिखने की उनकी इच्छा है। विशिष्ट अतिथि जाने-माने कथाकार श्री प्रतापसिंह सोढ़ी ने कहा कि श्री कमर मेवाड़ी की साहित्य सेवा को देखते हुए उज्जैन से प्रकाशित समावर्तन हिन्दी मासिक द्वारा कमर मेवाड़ी के सरोकारों को फरवरी 2019 के अंक में ससम्मान प्रकाशित किया था, क्योंकि उनके कार्य ही उन्हें सम्माननीय बनाते हैं 'सृजन कुंज' के सम्पादक और विशिष्ट अतिथि डॉ.कृष्णकुमार 'आशु' ने कहा - 'कमर जी के साथ मेरा रिश्ता विचार के स्तर पर एकरूपता का है। 'सृजन कुंज' के कमर मेवाड़ी पर केन्द्रित विशेषांक के अतिथि सम्पादक माधव नागदा की राय में कमर मेवाड़ी हिन्दी साहित्याकाश के ऐसे अकेले चाँद है जिन्होंने न केवल सम्बोधन को बुलंदियों पर पहुँचाया बल्कि अपनी सृजनशीलता को भी बनाए रखा। आचार्य निरंजननाथ सम्मान समिति के अध्यक्ष कर्नल देशबंधु आचार्य ने अपना आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहा कि - 'कमर मेवाड़ी एक संघर्षशील एवं जिन्दादिल इन्सान है। अन्त में समारोह के अध्यक्ष विख्यात आयुर्वेदाचार्य एवं समाजसेवी डॉ.वेदप्रकाश शर्मा ने कहा - 'सत साहित्य रूपी वृक्ष को अपनी प्रतिभा के सिंचन करने वाले हमेशा जीवित रहें और प्रेरणा स्रोत बने रहे। मेरे छोटे भाई विद्यासागर और कांकरोली के क़मर मेवाड़ी इस राह में अपने सद्प्रयासों की छाप छोड़ने वालों में शामिल हैं। समारोह में वरिष्ठ साहित्यकार ईश्वरचन्द्र शर्मा, चतुर कोठारी, फतहलाल गुर्जर 'अनोखा', अफजल खां अफ़ज़ल, किशन कबीरा, दुर्गाशंकर 'मधु', इलियास मोहम्मद, डॉ.राकेश तैलंग, जीतमल कच्छारा, डॉ.रचना तैलंग, मुरलीधर कनेरिया, भंवर पालीवाल 'बाँस', मुबारक खां खंजर, कुसुमलता अग्रवाल, हर्षवर्द्धन सिंह भाटी, सूर्यप्रकाश दीक्षित, गिरिजा शंकर पालीवाल, श्रीमती सुधा मेहता, रामसहाय विजयवर्गीय, कल्याणसिंह पगारिया, नारायणसिंह राव, प्रदीप सांचीहार, रवीन्द्र सिंह मेहता, गोविन्द औदिच्य, भगवत शर्मा, मदनलाल धोका, डॉ.भगवानलाल बंशीवाल, राजाराम उपाध्याय, सत्यनारायण आदि साहित्यकारों, प्रबुद्धजनों एवं साहित्य प्रेमियों की महत्त्वपूर्ण भागीदारी रही। कार्यक्रम का संचालन नरेन्द्र निर्मल ने किया। प्रस्तुति - राधेश्याम मसुदिया

चिट्ठी-पत्री

महोदय,

'समावर्तन' अब एक गरिमामय सारस्वत अनुष्ठान बनता जा रहा है जिस के लिये आपको एवं आपकी पूरी टीम को साधुवाद। रचना वैविध्य एवं स्तरीयता का निर्वहन आप कर रहे हैं। गेटअप भी आकर्षक और सुरुचिपूर्ण है। आशा है, इस परम्परा का निर्वाह होता रहेगा।

किशोर काबरा, अहमदाबाद

महोदय,

समकालीन हिन्दी कहानी के इस भयावह दौर में प्रयोगधर्मिता के नाम पर अमूर्तन के ताने-बाने से नक्काशी की गई कहानियाँ लिखी जा रही है, और नामवरी के आतंक से सहमे सम्पादकों के द्वारा उन्हें अपनी पत्रिकाओं में उन रचनाकारों की प्रशस्तियों के साथ छापा जा रहा है, यह हिन्दी पाठक के साथ (यानि बचे खुचे हिन्दी पाठक के साथ) घनघोर छलावा है, और यह निरंतर जारी है। हिन्दी साहित्य की विधाओं में कविता की पठनीयता तो अभी बनी हुई है पर कहानी की उक्त वर्णित दुर्गति के चलते कई कथाकार लघुकथा सृजन की ओर मुड़े हैं। कहानी विधा की इस समकालीन तपती, पसीना-पसीना उमस के दौर में यदा कदा कोई रचना जब अचानक ऐसी पढ़ने में आ जाती है तो लगता है ठंडी शीतल बयार भरी फुहारों से मन नहा गया हो! ऐसी ही कहानी समावर्तन के जून 19 अंक में पढ़ने को मिली 'फैसला'। वरिष्ठ लेखक श्री प्रतापसिंह सोढ़ी द्वारा लिखी सीधी, सहज सरल और सादगी से परिपूर्ण यह कहानी प्रेमचंद युगीन कहानी के दौर की याद ताजा कर गई जो मानवीय गरिमा और महिमा को रेखांकित करती है।

वेद हिमांशु, इन्दौर

समावर्तन की वार्षिक सदस्यता हेतु

- समावर्तन की वार्षिक सदस्यता ग्रहण करने हेतु रूपये 1500/- नियत है जो मनिआर्डर से अथवा चेक से भेजे जा सकते हैं। चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखना होगा। चेक और मनिआर्डर डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य, माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन 456010 के पते पर भेजना होगा।
- समावर्तन की वार्षिक व्यक्तिगत अथवा संस्थागत सदस्यता का शुल्क डिजिटल माध्यम से भी भुगतान किया जा सकता है। जिसके लिए बैंक डिटेल्स निम्नानुसार है।

  बैंक का नाम - आयडीबीआय, ब्रांच का नाम - फ्रीगंज ब्रांच, उज्जैन, खाता क्रमांक - 0088102000031620, खातेदार का नाम- समावर्तन

  आयएफएससी नं.- आयबीकेएल 0000088
- डिजिटल एवं चेक/मनिआर्डर से भुगतान करने पर तदनुसार पत्र द्वारा सूचित करने का कष्ट करें।

संपादक, समावर्तन, उज्जैन - संपर्क - 94259-15010

अनंतिम

पिछली बार हमने चर्चित उपन्यास 'जलतरंग' पर सुपरिचित लेखक श्री राकेश मिश्र के विचारों को पढ़ा। आज हम सुविख्यात उपन्यासकार और साहित्यकर्मी श्री भगवानदास मोरवाल के द्वारा व्यक्त की गई उन बातों को जानेंगे जो उन्होंने इस उपन्यास को पढ़ते हुए महसूस कीं।

वे कहते हैं कि मैं यहाँ अपनी बात दो रूपों में करना चाहूँगा- एक पाठक के तौर पर, एक उपन्यासकार के तौर पर। सवाल यह है कि ऐसे उपन्यासों की जो नियति है वो हमारे पाठक वर्ग और आलोचक वर्ग में किस तरह की होती है? कहने तो ये उपन्यास गीत-संगीत, गायन, राग, उसकी उत्पत्ति, विकास और इतिहास की कहानी लगती है लेकिन महत्वपूर्ण पहलू यह होता है कि वह कितनी शिद्दत और संजीदगी से हमें उसमें प्रवेश कराता है।

ये उपन्यास, हमारे यहाँ खासतौर से मध्यवर्ग में जो एक सांस्कृतिक संकट है, कहना चाहिए कि जो बहुत तेजी से अपनी जगह बनाता जा रहा है और अगर सीधी-सीधी सी बात करें तो हमारे यहाँ जो पाठक वर्ग है, जो आम-जन है, उसकी समझ या उसकी रूचि शास्त्रीय गायन-मैं शास्त्रीय गायन की ज्यादा बात कर रहा हूँ- के प्रति कितनी होती है ? लेकिन इस उपन्यास के माध्यम से बात साफ होती है कि उपन्यास को 'कल्चर डिस्कोर्स' का उपन्यास है। कल्चर डिस्कोर्स का उपन्यास इस मायने में कि हमारी भारतीय मनीषा की जो परम्परा रही है, उसके आलोक में हमारे यहाँ इस तरह का लेखन बहुत कम, नहीं होता है।

संयोग से जिस इलाके को लेकर ये उपन्यास लिखा गया है, मैंने देवाशीष की वो बालकनी भी देखी, देवाशीष के घर को, उस पार्क को और उस पूरे इलाके को भी देखा। एक लेखक के तौर पर मैं ऐसी चीजों को जरूरी भी समझता हूँ। आखिर लेखक कुछ छोटी-सी चीजों को किस तरह से- जो यथार्थ बहुत छोटा है, अपनी कल्पनाशीलता से किस तरह से उसको विस्तार देता है और किस तरह से उसको प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाता है। ये कई बार जब रचना के उस क्षेत्र में आप जाते हैं, जहाँ से लेखक कच्चा माल इकट्ठा करता है, तब पता चलता है।

मैं यहाँ अब एक पाठक की हैसियत से अपनी बात करना चाहता हूँ कि अगर मैं कुछ लिख रहा हूँ कथाकार की हैसियत से या उपन्यासकार की हैसियत से, तो मेरी रचना को एक पाठक क्यों पढ़े? ये सबसे बुनियादी सवाल है जिसका उत्तर संतोष बेहतर देते हैं।

मेरा यह मानना है कि एक पाठक के तौर पर एक लेखक से बहुत सारी अपेक्षाएँ होती हैं और सबसे बड़ी अपेक्षा यह होती है कि जो रचना वह पढ़रहा है- उसकी शास्त्रीय मीमांसा से पाठक को कोई लेना-देना नहीं होता है, वो आलोचकों का काम है और जब लेखक लिखता है तो वह बहुत सारी चीजों का इस तरह से उसमें मिश्रण करता है कि आपको जो यथार्थ है वो कल्पना नजर आता है और जो कल्पना है वो यथार्थ नजर आता है। यह लेखक का अपना नजरिया और रचनात्मक कौशल है। तो सवाल उठता है कि पाठक उसको क्यों पढ़े?

मेरा यह मानना है, जब मैं इस उपन्यास को पढ़रहा था, देखिए पहली बात, मैं बहुत साफ कर दूँ कि एक पाठक के लिए प्रथमतः यह एक बहुत गरिष्ठ किस्म का उपन्यास है। लेकिन जैसे कल संतोष चौबे जी ने जब अंश सुनाया, मजेदार चीज देखिए कि जो रिस्पॉन्स आखिरी हिस्से में मिला, जो तालियाँ पीटीं, जो वाह-वाही मिली और उससे पहले श्रोताओं में जो एक हल्की-सी खामोशी थी- ये कहीं न कहीं हमारे उस पाठक की मानसिकता को भी दर्शाता है, हमारी समझ को भी दर्शाता है।

ये उपन्यास- अगर मैं कहूँ, जैसा कि मुझे शुरू में लगा, लेकिन बाद में नहीं-

इसका जो दूसरा भाग है 'विलम्बित', मैं समझता हूँ कि इस उपन्यास का सबसे बड़ा जो ताकतवर हिस्सा है, वही 'विलम्बित' है।

मुझे लगता है कि अच्छी रचना वही होती है जो पाठक को समृद्ध करे, उसके ज्ञान में वृद्धि करे। अब यह कहा जा सकता है कि वो जो ज्ञान है, उसमें वृद्धि हो।

ये एक लेखक के नाते मेरा अपना मानना है। इस उपन्यास में मैंने कुछ सूक्त वाक्य, जो पूरे उपन्यास में और भी हो सकते हैं, लेकिन उसमें तीन सूक्त वाक्य की तरह मैंने नोट किये हैं और मुझे लगता है कि आप भी सहमत होंगे, जिसमें से एक के बारे में कई बार कहा जा सकता कि दरअसल हम राजनैतिक इतिहास के चक्कर में अपने सांस्कृतिक इतिहास को भूल गये। ये बहुत बड़ी बात है। क्योंकि किसी भी समाज की बुनियाद- राजनीति तो बाद की उत्पत्ति है- उसके सांस्कृतिक इतिहास, उस पर हमारे यहाँ बिल्कुल भी काम नहीं हुआ। ये लगभग उस भारतीय महाद्वीप का दुर्भाग्य है और अब तो स्थिति यह आ गयी है कि धीरे-धीरे उसको अलग-अलग खानों में बाँटना शुरू हो गया है। जबकि संगीत या गायन या कला का कोई धर्म नहीं होता। गजल, आज की तारीख में या पहले भी, बल्कि आज क्या पहले क्या, किसी धर्म विशेष से उसका कोई संबंध नहीं था। इसमें इस तरह की बहुत सारे तथ्य दिए गए हैं।

इसी तरह इसमें एक जो मजेदार चीज है, वह उपन्यास बहुत सारे मिथकों और अवधारणाओं को खण्डित करता है। हम अपने राजा-महाराजाओं के बारे में जैसे अक्सर कहते हैं, इसमें उसी तरह लिया है कि- असल में हम अपने राजाओं को राजाओं की तरह ही देखने के आदी हैं, भूल जाते हैं कि वे भी मनुष्य ही थे और साहित्य तथा संगीत उनकी भी जरूरत रहे होंगे। दरअसल उनके सामन्तवाद, उनके शोषण, उसी पर, हम लोगों का ध्यान जाता हैं। अगर आप देखें, ये कटु सत्य है कि कला-साहित्य का जितना संवर्धन , उसका जितना विकास- भले ही सामन्तवादी रहे हों, शोषण करते रहे हों- जितना राजा-महाराजाओं के काल में हुआ है, उतना मैं समझता हूँ कि इस मुल्क में कम से कम आजादी के बाद तो नहीं हुआ है।

अगर मैं यह कहूँ कि पिछले लगभग एक-डेढ़दशक में मुझे दूसरा ऐसा उपन्यास लगता है, जो इस तरह की सांस्कृतिक विधा को लेकर यानी शास्त्रीय संगीत को लेकर हुआ। पहला 'मुझे चाँद चाहिए', वो नाट्य कला पर था। उसकी बहुत प्रशंसा हुई। आप सब जानते ही हैं कि साहित्य एकेडमी अवार्ड मिला।

ऐसे उपन्यास की सबसे बड़ी एक और चीज है, आप इसको विशेषता भी कह सकते हैं,- ऐसे उपन्यास कम से कम दो रीडिंग की माँग करते हैं। यह एक सिटिंग का उपन्यास नहीं है। अगर कोई पाठक इसको तरीके से पढ़ना चाहे तो इसमें इतनी गुंजाइश है। ये उपन्यास कम से कम दो रीडिंग की मांग करता है।

आखिरी बात, अब सन्देह इस बात का है कि हमारा हिन्दी का जो आलोचक वर्ग है, वो इस उपन्यास को किस तरह से लेता है? चूँकि हिन्दी में, हिन्दी साहित्य में जो सबसे ज्यादा संदेह के घेरे में आजकल है, वो आलोचना ही है। मुझे खतरा इस बात का है कि अगर इसमें कुछ चीज नहीं मिलेगी, जब कुछ समझ में नहीं आयेगा तो भाषा, शिल्प और संवेदना पर बात करके, इसकी दो-चार कमजोरी और विशेषताओं का जिक्र करके इसकी इतिश्री कर दी जायेगी। लेकिन ऐसे उपन्यास या ये उपन्यास, उससे ज्यादा की मांग करता है।

आज यहीं तक। अगली बार फिर कहीं तक। स

मुकेश वर्मा

मोबाइलः 94250-14166

www.rntu.ac.in Follow on us

Rabindranath
TAGORE UNIVERSITY™
MADHYA PRADESH, BHOPAL AN AISECT GROUP UNIVERSITY

RNTU is in the Rank Band 151-200 in University Category in nirf 2019

Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, M.P. PARAMEDICAL COUNCIL | Recognized by : UGC | Member of : AIU, ACU

UNLOCKING POTENTIAL

GREAT PLACE TO STUDY CERTIFICATION 2019-20

Prominent features

- **32 Skill Courses** in India's **first skill-based university**
- Only private university in Madhya Pradesh to set up **Atal Incubation Centre : AIC - RNTU Foundation** supported by **NITI Aayog, AIM**
- **9 Centres** of **Excellence and Skills** housed in RNTU
- Dedicated resources for conducting research in emerging technologies like **IOT, Block chain**
- Established **Pradhan Mantri Kaushal Kendra** in the University for hands on experience
- **International collaboration** for greater exposure
- **Huge in-house** funding to promote research
- **15 International** & **30 National** Level collaborations
- **Project Unnat Bharat** awarded by **MHRD** to the University

ADMISSIONS OPEN 2019-2020

Engineering & Technology
B.E.
CS | EC | ME | Civil | EEE
M.Tech
ME (Production, Thermal) VLSI | CSE | Wir. Mob. Comm. Power Systems | CE
Diploma
Civil Engg. Mechanical Engg. Electrical & Electronics Engg.

Management
MBA | BBA
M.Phil. (Management)
PG Diploma (Urban, Rural Management)

Education
B.Ed | B.P.Ed | M.Ed
B.Ed (Part Time) | M.Phil.

Mass Communication & Journalism
BJMC, MJMC, B.A. | M.A. (Mass Communication & Journalism)

Paramedical Science
Diploma Yoga/PG Dip. Yoga | B.Sc (Yoga) | M.sc (Yoga) | Certificate in Dresser/Yoga Trainer *M.P.T. | B.P.T. *B.M.L.T. | D.M.L.T. | Diploma in Dialysis Tech. | Diploma in Cath. Lab Tech

*Subject to Approval

Arts
B.A. Hons. | M.A. (Hindi, English, History, Political Science, Economics, Sociology)
MSW | B.Lib. | M.Lib
M.Phil. (Selective Branch)

Law
B.A. (LL.B.) | LL.B. | LL.M.

Computer Science & IT
DCA | PGDCA | BCA
B.Sc. (IT) | B.Sc. (CS)
M.Sc. (IT) | M.Sc. (CS)
M.Phil. (IT) | M.Phil. (CS)

Nursing
B.Sc. (Nursing) | GNM

Commerce
B.Com. (Plain)
B.Com. (C.A., Taxation, Hons.)
M.Com. (Taxation, Management)
M.Phil. (Commerce)

Agriculture
B.Sc. (Hons.) | M.Sc. (Agri.)

Science
Physics
B.Sc. | B.Sc. Hons. | M.Sc. M.Phil.
Chemistry
B.Sc. | B.Sc. Hons. | M.Sc. M.Phil.
Mathematics
B.Sc. | B.Sc. Hons. | M.Sc. M.Phil.
Biology
B.Sc. (CBZ/Micro-bio./Biotech)
Botany
M.Sc. | M.Phil.
Zoology
M.Sc. | M.Phil.
Electronics
M.Phil.

Ph.D. & M.Phil. in selected subjects through separate entrance tests

Industry Oriented New Age Skills Offered in collaboration with MICRO FOCUS, Hewlett Packard Enterprise

Certificate, 1 year & 2 years programs offered in following disciplines :

Cyber Security | Quality Engineering | Big Data | Machine Learning | Artificial Intelligence & many more...

AISECT UNIVERSITY शिक्षा मित्र Scholarships

University's Radio Channel Yuvaaz Youth Ki Awaaz

www.aisectyuvaaz.com

A UNIT OF AISECT™ GROUP OF UNIVERSITIES India's Leading Higher Education Group

CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

Admission Helpline : 9893350135, 9977414175, 9131797517, 8878852348

UNIVERSITY CAMPUS : Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-2700400, 2700413
City Office: 3rd Floor, Sarnath Complex, Board Office Square, Shivaji Nagar, Bhopal - 462016, Ph.: 0755-4289606, 8109347769, Email: info@rntu.ac.in

हार्दिक बधाई

निरंजन श्रोत्रिय

हिन्दी की प्रमुख साहित्यिक समूह पत्रिका 'सृजन पक्ष' द्वारा समावर्तन के मुख्य संपादक कवि-कथाकार श्री निरंजन श्रोत्रिय को जनपक्षधरता की प्रतिबद्ध कविता, कहानी लेखन एवं कविता द्वाद्वश द्वारा युवा कवियों को अपनी आलोचना के साथ कविता के केन्द्र में लाने के लिए 'सृजनपक्ष-सम्मान-2019' से सम्मानित होने पर हार्दिक बधाई....

समावर्तन परिवार

उज्जैन, मुम्बई, कोलकाता, सूरत, अहमदाबाद, भोपाल, इन्दौर एवं नई दिल्ली